
अध्याय-3

चार्वाक दर्शन के विभिन्न दार्शनिक पक्षों की समीक्षा

अब हम चार्वाक के विभिन्न दार्शनिक पक्षों की समीक्षात्मक विवेचन प्रस्तुत करेंगे। यहाँ हम चार्वाक दर्शन की ज्ञानमीमांसा, तत्त्वमीमांसा तथा आचरणशास्त्रीय (नीतिशास्त्रीय) क्षेत्रों का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत करेंगे।

ज्ञान मीमांसा

चार्वाक दर्शन मुख्य रूप से उनकी ज्ञान मीमांसा (प्रमाण संबंधी विचारों) पर ही आधारित है। प्रमाण विज्ञान की सबसे प्रमुख समस्या ये हैं—तत्त्व ज्ञान की सीमा क्या है? इनकी रचना या उत्पत्ति तथा विकास कैसे होता है? ज्ञान प्राप्ति के लिए कौन-कौन से साधन या क्या प्रमाण हैं? इन प्रश्नों का उत्तर देने से पहले यह बतलाना आवश्यक प्रतीत होता है कि यथार्थ ज्ञान क्या है? अयथार्थ ज्ञान क्या है?

यथार्थ ज्ञान को प्रमा और प्रमा के कारण को प्रमाण कहा जाता है। ज्ञान मुख्य रूप से दो तरह के होते हैं—1. प्रमा और 2. अप्रमा। प्रमा को हम वास्तविक या यथार्थ ज्ञान के रूप में जानते हैं। इसके द्वारा जो वस्तु जैसी या जिस रूप में रहती है, उसे उसी रूप में जानते हैं। इस ज्ञान की तुलना दर्पण से की जा सकती है। चूंकि यह दर्पण के समान काम करता है। दर्पण में जो वस्तु जैसी रहती है ठीक उसी प्रकार वह वस्तु (उद्दीपन) दिखाई देती है न कि दूसरे रूप में। दूसरी तरफ अप्रमा को अयथार्थ या अवास्तविक ज्ञान के रूप में जाना जाता है। इससे जो वस्तु जैसी है वैसी नजर—न—आकर दूसरे रूप में नजर आती है यानी किसी वस्तु का ज्ञान हमें उसके वास्तविक रूप में न होकर दूसरे रूप में होता है। जैसे मन्द प्रकाश या दृष्टि दोष के कारण हमें रस्सी को देखने पर सर्प का ज्ञान होता है या सर्प को देखकर रस्सी का ज्ञान होता है। किसी वृक्ष या झाड़ी को देखकर भूत का भय होता है। रेल की पटरियां बहुत दूर में जाकर मिलती हुई प्रतीत होती है। आकाश दूर में जाकर गिरता हुआ प्रतीत होता है। यह सब अप्रमा के अन्तर्गत ही आयेगा।

अब प्रश्न है कि प्रमा या यथार्थ ज्ञान के लिए कौन-कौनसी बातों का रहना आवश्यक है? प्रमा के लिए मुख्य रूप से तीन बातों का रहना आवश्यक है वे निम्नलिखित हैं—1. प्रमाता (जानने वाला, ज्ञाता) 2. प्रमेय (ज्ञान का विषय जिसे जाना जाता है) 3. प्रमाण अर्थात् ज्ञान प्राप्ति के साधन या उपाय।

प्रमाणों के सम्बन्ध में भारतीय दार्शनिकों में मतैक्य (एक मत) नहीं है। भट्टमीमांसक और वेदान्ती यथार्थ ज्ञान के छः साधन मानते हैं, वे इस प्रकार हैं—प्रत्यक्ष, अनुमान, शब्द, उपमान, अर्थापत्ति और अनुपलब्धि। न्याय दर्शन में

सिर्फ चार साधनों को माना गया है। इन लोगों ने अर्थापत्ति और अनुपलब्धि को स्वतंत्र प्रमाण नहीं माना है, जैन और सांख्य दर्शनों में सिर्फ तीन प्रमाणों (प्रत्यक्ष, अनुमान और शब्द) को ही स्वीकार किया गया है। जैन और सांख्य दार्शनिकों ने उपमान को स्वतंत्र प्रमाण के रूप में स्वीकार नहीं किया है। वैशेषिक दर्शन में सिर्फ प्रत्यक्ष और अनुमान को ही ज्ञान का स्वतंत्र प्रमाण माना गया है।

चार्वाक दर्शन में उपर्युक्त प्रमाणों में से केवल प्रत्यक्ष को ज्ञान प्राप्ति का एकमात्र साधन बतलाया गया है, और अन्य सभी साधनों का निषेध किया गया है। इस प्रकार इनकी ज्ञानमीमांसा के दो पक्ष हो जाते हैं—भावात्मक और अभावात्मक (निषेधात्मक)। अनुमान, उपमान, शब्द, अर्थापत्ति और अनुपलब्धि जैसे प्रमाणों का खंडन करना इसका निषेधात्मक पक्ष है और प्रत्यक्ष को एकमात्र यथार्थ प्रमाण मानना इसका भावात्मक पक्ष है।

अब प्रश्न उठता है कि प्रत्यक्ष किसे कहते हैं? प्रत्यक्ष दो शब्दों के योग से बना है—प्रति+अक्ष। प्रति का अर्थ सामने होना होता है और अक्ष का अर्थ आंख है। अतः आँख के सामने होना ही प्रत्यक्ष प्रमाण कहलाता है। पहले प्रत्यक्ष का अर्थ मात्र आंख से देखना ही समझा जाता था लेकिन बाद में आंख से सभी इन्द्रियों का बोध होने लगा। यानी इससे सभी इन्द्रियों का यहाँ बोध होता है। इस सम्बन्ध में डॉ. उमेश मिश्रा के वक्तव्य का उल्लेख करना उचित प्रतीत होता है। उन्हीं के शब्दों में “पहले ये केवल चक्षु से देखने को प्रत्यक्ष कहते थे, किन्तु ज्ञान के क्रमिक विकास से अन्य इन्द्रियों के द्वारा भी अर्थात् कान, नाक, त्वक तथा जिह्वा के द्वारा भी प्रत्यक्ष मानने लगे। इस प्रकार प्रत्यक्ष प्रमाण पाँच प्रकार का माना जाने लगा।”¹ चार्वाक के अनुसार ज्ञानेन्द्रियों एवं वस्तुओं के संयोग से प्राप्त ज्ञान ही प्रत्यक्ष है। प्रारम्भ में ये पाँच ज्ञानेन्द्रियों के द्वारा प्राप्त ज्ञान को ही प्रत्यक्ष मानते थे लेकिन काल-क्रम के अनुसार इनके मत में भी विकास हुआ। इसके फलस्वरूप इन्होंने छः ज्ञानेन्द्रियों एवं वस्तुओं के संयोग से प्राप्त ज्ञान को भी प्रत्यक्ष कहा। वे ज्ञानेन्द्रियाँ इस प्रकार हैं—आँख, कान, नाक, जिह्वा, त्वचा और मन। इन्हीं ज्ञानेन्द्रियों के आधार पर प्रत्यक्ष का भी विभाजन हुआ है—बाह्य प्रत्यक्ष और आन्तरिक प्रत्यक्ष।

पाँच ज्ञानेन्द्रियों के द्वारा किया गया प्रत्यक्ष बाह्य प्रत्यक्ष प्रमाण कहलाता है और मन के द्वारा किया गया प्रत्यक्ष आन्तरिक प्रत्यक्ष के नाम से संबोधित किया जाता है। जब किसी वस्तु का संयोग हमारी इन ज्ञानेन्द्रियों का किसी के साथ होता है तो हमें प्रत्यक्ष ज्ञान मिलता है। जैसे जब आंख का संयोग आम के

साथ होता है तो हमें उसके गोल एवं लाल होने का जो ज्ञान मिलता है, वही प्रत्यक्ष है।

न्यायसूत्र में प्रत्यक्ष की परिभाषा से भी इन बातों की पुष्टि होती है। गौतम ने बतलाया है कि 'इन्द्रियार्थ सन्निकर्षोत्पन्नज्ञानमव्ययदेशयव्यभिचारी व्यवसायात्मकं प्रत्यक्षम्। अर्थात् इन्द्रियों और वस्तुओं के सन्निकर्ष (संपर्क या मिलने) से उत्पन्न ज्ञान ही प्रत्यक्ष है। अन्नभट्ट ने अपने तर्कसंग्रह में लिखा है—इन्द्रियार्थ सन्निकर्ष जन्यं ज्ञानं प्रत्यक्षम्। गंगेश उपाध्याय (नव्य नैयायिक) के अनुसार प्रत्यक्ष का सामान्य लक्षण है—विषय की साक्षात् प्रतीति। उन्हीं के शब्दों में “प्रत्यक्षस्य साक्षात् कारित्वं लक्षणम्।”

अब प्रश्न उठता है कि चार्वाक प्रत्यक्ष को ही स्वतंत्र प्रमाण क्यों मानते हैं? चार्वाक के अनुसार प्रत्यक्ष के द्वारा प्राप्त ज्ञान यथार्थ, असंदिग्ध एवं निश्चित होता है। अतः इसे स्वतंत्र प्रमाण मानना न्यायसंगत ही है। तभी तो माधवाचार्य ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक सर्वदर्शन संग्रह में लिखा है कि प्रत्यक्ष मेव प्रमाणम्। तर्क संग्रह में बतलाया गया है कि प्रमाकरणं प्रमाणम्। सांख्य तत्त्व कौमुदी में “प्रमीयतेऽनेनेति निर्वचनात्प्रमाप्रतिकरणत्वम वागम्यते। भाषा परिच्छेद में बतलाया गया है—अप्रमा च प्रमाचेति ज्ञान द्विविध मित्यते तच्छयेतन्मतिर्चास्याद प्रमा सा निरूपित। यद्यपि इन लोगों ने मात्र प्रत्यक्ष को ही ज्ञान का साधन नहीं माना है बल्कि अन्य प्रमाणों को भी स्वतंत्र प्रमाण के रूप स्वीकार किया है। फिर भी प्रत्यक्ष को मौलिक और महत्वपूर्ण स्थान प्रदान किया गया है। न्यायवार्तिक तात्पर्य टीका में बतलाया गया है कि “सर्वप्रमाणानो प्रत्यक्ष पूर्वकत्वात्”। अतः प्रमाणों में प्रत्यक्ष सबसे पहले आता है अतः इसलिए यह अत्यन्त ही महत्वपूर्ण एवं मौलिक माना जाता है। यह सभी प्रमाणों का आधार है। पाश्चात्य विचारक जे.एस. मिल ने भी इस तथ्य का समर्थन किया है।

चार्वाक को इन्द्रियानुभववादी भी कहा गया है। एम.एन. राय ने भी बतलाया है कि भारतीय दार्शनिक इन्द्रियानुभववादी थे। उनके अनुसार प्रत्यक्ष ज्ञान का एकमात्र स्रोत है। जो भी हो इतना तो मानना आवश्यक ही है कि इन्द्रिय प्रत्यक्ष की महत्ता को सब ने स्वीकार किया है। प्रबोध चन्द्रोदय नामक एक अन्योक्तिरूपकालंकार युक्त नाटक के एक पात्र के द्वारा भी प्रत्यक्षानुभव की ही प्रमाणिकता को स्वीकार किया गया है। डॉ. राधाकृष्णन् के शब्दों में “साक्षात् इन्द्रिय सम्बन्ध से जो जाना जाता है, वही सत्य है, केवल वही विद्यमान है। जिसका हम प्रत्यक्ष ज्ञान ही नहीं कर सकते हैं, उसका अस्तित्व नहीं है।”²

भारतीय दर्शन में चार्वाक एक ऐसा दार्शनिक सम्प्रदाय है जो प्रत्यक्ष को एकमात्र स्वतंत्र प्रमाण स्वीकार करता है। यदि प्रत्यक्ष मात्र को प्रमाण न भी स्वीकार किया जाए फिर भी अनुभव पर अवलंबित सर्वसाधारण की यह धारणा है कि प्रत्यक्ष अनुमान से बलवान है। यह कहावत प्रचलित है कि सुना हुआ देखे हुए के समान कैसे हो सकता है? शब्द आदि अन्य प्रमाण प्रत्यक्ष के समान बलशाली नहीं हो सकते। विशेष अवस्थाओं में अनुमान तथा शब्द का प्रत्यक्ष की अपेक्षा चाहे अधिक महत्त्व सिद्ध हो और व्यवहार में भी चाहे व्यक्ति वैद्य, कलाकार आदि की सम्मति को अपने अनुभव से अधिक महत्त्व देता हो परन्तु ऐसा तभी होता जबकि कई कारणों से अपने अनुभव में संदेह हो, अन्यथा अपने प्रत्यक्ष को अप्रामाणिक मानना असंभव है। तभी तो कहा गया है—प्रत्यक्षमेव किम् प्रमाणम् (प्रत्यक्षं किं प्रमाणम्)।

इसके साथ ही अन्य प्रमाणों की अपेक्षा प्रत्यक्ष प्रमाण का इसलिए भी अधिक महत्त्व है कि प्रत्यक्ष ज्ञान जितना स्पष्ट और पूर्ण होता है, उतना साधारणतः अन्य प्रमाणों (अनुमान, शब्द आदि) के द्वारा प्राप्त ज्ञान स्पष्ट और पूर्ण नहीं है। अतः अन्य प्रमाणों के द्वारा असंदिग्ध ज्ञान प्राप्त करना संभव नहीं है, जैसाकि प्रत्यक्ष के द्वारा प्राप्त किया जाता है क्योंकि प्रत्यक्ष स्वयं ही पर्याप्त है।

यह तो स्पष्ट ही है कि प्रत्यक्ष अन्य प्रमाणों की अपेक्षा विश्वसनीय अधिक है। इसीलिए वात्स्यायन ने कहा है कि प्रत्यक्ष ज्ञान के अभाव में अनुमान संभव नहीं है। वस्तुतः जब तक किसी वस्तु का प्रत्यक्ष ज्ञान नहीं होता तब तक उस वस्तु के सम्बन्ध में जो ज्ञान होता है, वह संदेह—रहित नहीं हो सकता। अतः असंदिग्ध ज्ञान प्रत्यक्ष के द्वारा ही होता है। यही कारण है कि वेद में भी कहा गया है कि प्रत्यक्ष आत्मा को देखने के लिए आवश्यक है। यही कारण है कि अन्य दार्शनिकों ने भी सत्य को जानने के लिए साक्षात् होना (प्रत्यक्ष होना) आवश्यक बतलाया है। अतः सत्य को जानने के लिए अपरोक्षानुभूति पर अधिक जोर दिया गया है। शंकराचार्य ने भी ब्रह्म या चरम सत्ता को जानने के लिए अपरोक्षानुभूति को ही माना है।

विज्ञान में भी निरीक्षण और प्रयोग के द्वारा किसी निष्कर्ष पर पहुँचा जाता है। हम जानते हैं कि निरीक्षण और प्रयोग दोनों में उद्देश्यपूर्ण प्रत्यक्षीकरण किया जाता है। अतः वहाँ भी प्रत्यक्ष पर आधारित ज्ञान को ही वास्तविक ज्ञान माना जाता है। निरीक्षण और प्रयोग वैज्ञानिक आगमन का वास्तविक आधार माना जाता है।

अब हम चार्वाक की ज्ञानमीमांसा के निषेधात्मक पक्षों की विवेचना करेंगे। इसके अन्तर्गत ज्ञान के अन्य प्रमाणों की आलोचना की गई है।

अनुमान की आलोचना

अनुमान का खण्डन करने के पहले हमें यह बतलाना आवश्यक प्रतीत होता है कि अनुमान क्या है? या अनुमान किसे कहते हैं? यहाँ हम अनुमान की संक्षेप में परिभाषा देंगे। अनुमान दो शब्दों के मेल से बना है—अनु और मान। अनु का अर्थ है बाद और मान का अर्थ है—ज्ञान। इसका शाब्दिक अर्थ होता है बाद वाला ज्ञान (पश्चात् ज्ञान)। अब प्रश्न उठता है अनुमान किसके बाद का ज्ञान है? उत्तर में यह कहा जा सकता है कि अनुमान प्रत्यक्ष के बाद में आने वाला ज्ञान है। यानी जो ज्ञान प्रत्यक्ष के बाद आता है उसे अनुमान कहा जाता है। ज्ञात के आधार पर अज्ञात के विषय में ज्ञान प्राप्त करने की क्रिया को अनुमान कहते हैं। गौतम और वात्स्यायन भी इसी मत के प्रतिपादक हैं। इनके अनुसार अनुमान प्रत्यक्ष पर आश्रित है। उदाहरण के लिए जब पहाड़ पर धुआँ का प्रत्यक्ष होता है तब हम आग का अनुमान करते हैं। दूसरे शब्दों में पहाड़ पर धुआँ का प्रत्यक्ष होने पर ही पहाड़ पर आग होने का अनुमान किया जाता है। प्रत्यक्ष ज्ञान के अभाव में अनुमानजन्य ज्ञान संभव नहीं है। अतः हम कह सकते हैं कि अनुमान वह प्रक्रिया है, जिसमें किसी लिंग या हेतु के प्रत्यक्ष ज्ञान के आधार पर किसी अन्य वस्तु का ज्ञान प्राप्त किया जाता है, क्योंकि वस्तु और हेतु के बीच व्याप्ति सम्बन्ध का ज्ञान पहले से ही रहता है। जैसे हम किसी वस्तु (पर्वत) पर धुआँ रूपी लिंग के प्रत्यक्ष के आधार पर वहाँ अग्नि रूपी दूसरी वस्तु का ज्ञान प्राप्त करते हैं, क्योंकि धुआँ और आग के बीच व्याप्ति सम्बन्ध का ज्ञान पहले से रहता है। इसी तरह बादल को देखकर वर्षा की बात सोचना या किसी विद्यार्थी को कठिन परिश्रम करते देखकर उसके प्रथम श्रेणी में परीक्षोत्तीर्ण होने की बात सोचना अनुमान है।

चार्वाक अनुमान को ज्ञान का यथार्थ साधन नहीं मानते हैं। उन्होंने अनुमान के विरुद्ध निम्नलिखित तर्क प्रस्तुत किया है—1. अनुमान संदेहात्मक है, चूँकि इसका अस्तित्व व्याप्ति पर निर्भर करता है। यानी अनुमान निश्चयात्मक नहीं होता है। अनुमान में संशय रहित तथा वास्तविक ज्ञान का सर्वथा अभाव रहता है। जब हम धूमयुक्त पर्वत को देखकर इस निर्णय पर पहुँचते हैं कि पर्वत अग्नियुक्त है तो हम प्रत्यक्ष से अप्रत्यक्ष पर चले जाते हैं। नैयायिकों के अनुसार इस प्रकार का प्रमाण बिल्कुल तर्कसंगत तथा युक्तिपूर्ण है चूँकि धूम और अग्नि

में व्याप्ति सम्बन्ध है। अतः हम कह सकते हैं कि जितने धूमयुक्त पदार्थ हैं, वे सभी अग्नियुक्त हैं। पर्वत धूमयुक्त है अतः पर्वत अग्नियुक्त है।

चार्वाक का कहना है कि अनुमान तभी निश्चयात्मक तथा तर्कसंगत हो सकता है जब व्याप्ति वाक्य सर्वथा असंदिग्ध हो, क्योंकि व्याप्ति वाक्य में ही लिंग का साध्य के साथ पूर्ण व्यापक सम्बन्ध स्थापित रहता है। धूमवान् पर्वत को निश्चयात्मक ढंग से अग्नियुक्त तभी मान सकते हैं, जब सभी धुआँयुक्त पदार्थ वास्तव में अग्नियुक्त हों। ऐसा हम तभी सिद्ध करने में समर्थ हो सकते हैं, जबकि हम सभी धूमवान् पदार्थों को और उनके साथ अग्नि के सम्बन्ध को देख सकें, जो कि संभव नहीं है। चूँकि इन तथ्यों को तीनों काल (वर्तमान, भूत और भविष्य) में नहीं देखा जा सकता है। मात्र भूत और भविष्य में ही नहीं बल्कि वर्तमान समय में संसार के सभी भागों में धूमवान् पदार्थ को नहीं देख सकते हैं। चार्वाक के अनुसार अनुमान को प्रमाण के रूप में स्वीकार करने वाले लोग व्याप्ति और पक्षधर्मता से युक्त लिंग को स्वीकार करते हैं। व्याप्ति का अर्थ संभावित और निश्चित दोनों ही प्रकार की उपाधियों से रहित पक्ष तथा लिंग का सम्बन्ध होता है। चक्षु आदि की तरह यह सम्बन्ध केवल अपनी सत्ता मात्र से ही अंगभाव को प्राप्त नहीं हो सकता, अपितु इसके ज्ञान से ही संभव है।

अब प्रश्न है कि इस व्याप्ति के ज्ञान का उपाय कौन-सा है? क्योंकि जिस प्रकार चक्षु दर्शन क्रिया का सहायक अंग है उसी प्रकार व्याप्ति भी अनुमान का अंग है किन्तु इन दोनों अंगों की सहायता में बड़ा अन्तर है। दर्शन क्रिया के समय स्वयं आँखों के ज्ञान की कोई आवश्यकता नहीं होती। अपितु उसका तो ज्ञान ही होना चाहिए, जो कि अनुमान के द्वारा संभव नहीं है। अतः अनुमान का आधार व्याप्ति है, जिसकी स्थापना किसी भी प्रकार से संभव नहीं है, चूँकि दो वस्तुओं के बीच नियत, अनौपाधिक एवं सामान्य सम्बन्ध को व्याप्ति कहा जाता है। उदाहरणार्थ धूम और अग्नि के बीच व्याप्ति का सम्बन्ध पाया जाता है और व्याप्ति के आधार पर ही अनुमान किया जाता है। फिर अनुमान के द्वारा व्याप्ति की स्थापना की जाती है। अतः इसमें चक्रक दोष उत्पन्न हो जाता है।

2. अनुमान व्याप्ति पर आधारित है और व्याप्ति की स्थापना न आगमन के द्वारा ही हो सकती है न निगमन के द्वारा ही। अतः अनुमानजन्य ज्ञान गलत है। तभी तो माधवाचार्य ने बतलाया है कि “अविनाभावस्य दूर्वोधतया नानुमानाद्यवकाशः। धूमादि ज्ञानानन्तर मग्नयादिज्ञाने प्रवृत्तिः प्रत्यक्ष मूलतया भ्रान्तया वा युज्यते”।³ अर्थात् जिस व्याप्ति के आधार पर अनुमान प्रमाण माना गया है, वही सिद्ध नहीं होती तो अनुमान को स्वतंत्र प्रमाण कैसे माना जाय?

उपर्युक्त विवेचनों से स्पष्ट है कि हम अनुमान नहीं कर सकते जब तक हमें सामान्य सम्बन्धों का ज्ञान न हो। प्रत्यक्षानुभव हमें सामान्य सम्बन्ध नहीं बता सकता और न अनुमान के ही कारण हमें सामान्य सम्बन्धों की जानकारी मिल सकती है क्योंकि इस प्रकार के अन्य अनुमान की अपेक्षा होगी और उसको एक अन्य की, आदि। दूसरों की गवाही या साक्ष्य को असंदिग्ध नहीं माना जा सकता है।

3. सादृश्यता या दृष्टान्त के आधार पर भी अनुमान की व्याख्या नहीं हो सकती और इसलिए अनुमान यथार्थ नहीं है। यह आकस्मिक रूप में ही उचित ठहर सकता है चूँकि यह मात्र विषयीगत सम्बन्ध है।

4. चार्वाक के अनुसार नैयायिक अनुमान के प्रमाण्य का समर्थन करने के प्रयास में सफल नहीं हुए हैं। वह स्वतः अपने आपको इसमें फँसा देता है।

5. अनुमान एक विशुद्ध मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया है जिसमें तार्किक निश्चयात्मकता का होना लेशमात्र भी आवश्यक नहीं है। यह तो अनुभव के दौरान हमारे मन में स्थापित हो जाने वाले साहचर्यों का फल है। अतः इसे तार्किक न कहकर मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया के रूप में ही स्वीकार किया जाना चाहिए।

6. चार्वाक के अनुसार अनुमान व्यावहारिक जीवन में भी उपयोगी नहीं है। जब हम व्यावहारिक जीवन में अपने विभिन्न अनुभवों का मूल्यांकन करते हैं तो पाते हैं कि अनेक अनुमान गलत हो जाते हैं इसलिए भी इसे अप्रामाणिक कहा जाता है।

7. चार्वाक का कहना है कि जनसाधारण के मार्ग का अनुसरण करना चाहिए (लौकिको मार्गोऽनुसर्तव्यः) लेकिन अनुमान जनसाधारण के लिए मार्ग नहीं है। यह तो विद्वानों का मार्ग है।

चार्वाक के विरुद्ध कभी-कभी यह तर्क दिया जाता है कि यदि अनुमान यथार्थ ज्ञान नहीं देता तो फिर इससे हमारे व्यावहारिक जीवन में मदद कैसे मिलती है? विद्यार्थी अनुमान करके कठिन मेहनत करता है कि उसे परीक्षा में सफलता मिलेगी। इसके विरुद्ध चार्वाक का कहना है कि व्यावहारिक जीवन में सहायक होने के कारण को अनुमान यथार्थ ज्ञान का साधन नहीं माना जा सकता है चूँकि अनुमान का सहारा लेकर चलने से कभी-कभी व्यक्ति संकट में भी फँस जाता है। अनुमान द्वारा प्राप्त ज्ञान के सत्य होने की केवल संभावना रहती है। संभावना और यथार्थ ज्ञान में मौलिक अन्तर है ऐसा नहीं कहा जा सकता है कि संभावना से यथार्थ ज्ञान मिलता है। ऐसा भी नहीं कहा जा सकता

है कि कठिन परिश्रम या मेहनत से परीक्षा में सफलता प्राप्त करेगा ही। चूँकि कठिन परिश्रम करने के बावजूद देखा गया है कि विद्यार्थी परीक्षा में अनुत्तीर्ण हो जाता है। अतः अनुमान को यथार्थ ज्ञान का साधन नहीं माना जा सकता है। प्रामाणिकता अनुमान का स्वाभाविक धर्म (लक्षण) नहीं है। हम अपने अनुभव के दौरान पाते हैं कि कुछ अनुमान प्रामाणिक होते हैं, तो कुछ अप्रामाणिक भी होते हैं।

व्याप्ति की स्थापना सम्बन्धी बातें

हम जानते हैं कि नियत और अनौपाधिक सम्बन्ध ही व्याप्ति कहला सकता है। यहाँ भी चार्वाक कह सकते हैं कि यदि केवल अतीत एवं वर्तमान अनुभव को लिया जाए कि धुआँ तथा अग्नि की व्याप्ति में कोई व्यवधान या व्यतिक्रम नहीं पाया गया है, किन्तु क्या प्रमाण है कि यह सम्बन्ध ग्रह, नक्षत्रों आदि सुदूर स्थानों के लिए तथा भविष्य में भी लागू होगा? इस संशय को दूर करने के लिए नैयायिक व्याप्ति के निमित्त कार्य—कारण—सिद्धान्त की सहायता लेते हैं। लेकिन यहाँ भी चार्वाक का कहना है कि कार्य—कारण सम्बन्ध भी सामान्य होने के कारण एक व्याप्ति है। यहाँ हम पाते हैं कि एक व्याप्ति को सिद्ध करने के लिए दूसरी व्याप्ति को अपनाने का प्रयास किया गया है, जिसके फलस्वरूप दोष उत्पन्न हो जाता है। इस दोष को पुनरावृत्ति दोष के नाम से जाना जाता है। अब प्रश्न है कि क्या प्रकृति—समरूपता—नियम से व्याप्ति की स्थापना हो सकती है? चार्वाक के अनुसार इसके द्वारा भी व्याप्ति की स्थापना नहीं हो सकती है। चार्वाक का कहना है कि प्रकृति—समरूपता—नियम भी सामान्य या व्याप्ति वाक्य ही है तो फिर स्वयं इनकी स्थापना किस प्रकार होगी? यहाँ भी एक सामान्य वाक्य की स्थापना अन्य सामान्य वाक्यों की सहायता से की जाती है। इसलिए यहाँ भी पुनरावृत्ति दोष आ जाता है। अतः प्रकृति—समरूपता—नियम और कार्य—कारण—नियम के द्वारा भी व्याप्ति की स्थापना नहीं हो सकती है।

नैयायिक सामान्य लक्षण ज्ञान के आधार पर भी व्याप्ति की स्थापना करते हैं। चार्वाक के लिए न्याय का यह तर्क भी मान्य नहीं है। चूँकि इनके अनुसार अलौकिक प्रत्यक्ष संभव नहीं है। इन्होंने अलौकिक प्रत्यक्ष को नहीं माना है। फिर इसके द्वारा व्याप्ति की स्थापना का प्रश्न ही नहीं उठता। अब प्रश्न है क्या व्याप्ति की स्थापना साधारण या लौकिक प्रत्यक्ष प्रमाण से हो सकता है? चार्वाक इस प्रश्न का निषेधात्मक उत्तर देता है। अतः साधारण प्रत्यक्ष से व्याप्ति

ज्ञान नहीं हो सकता है। व्याप्ति की स्थापना न आन्तरिक और न बाह्य प्रत्यक्ष के द्वारा ही हो सकता है।

अब जहाँ तक शब्द प्रमाण के द्वारा व्याप्ति की स्थापना का प्रश्न है कि क्या शब्द प्रमाण के द्वारा व्याप्ति की स्थापना को सकती है? इस प्रश्न का उत्तर देने के पहले यह बतलाना आवश्यक है कि शब्द क्या है? विश्वसनीय व्यक्ति के वचन (आप्त पुरुष के कथन) को ही शब्द कहा जाता है (आप्तोपदेशः शब्दः)। चार्वाक का कहना है...शब्द के द्वारा भी व्याप्ति सम्बन्ध की स्थापना नहीं होती है। दूसरे शब्दों में शब्द प्रमाण से भी व्याप्ति ज्ञान संभव नहीं है क्योंकि यह भी प्रत्यक्ष और अनुमान पर आश्रित है। जब तक हमें शब्दों का प्रत्यक्ष न हो, तब तक उनके द्वारा ज्ञान नहीं हो सकता। इसके लिए अनुमान का ही सहारा लेना पड़ता है.....जैसे सभी विश्वसनीय व्यक्तियों के कथन सत्य होते हैं।

“यह कथन विश्वसनीय व्यक्ति का है।

इसलिए यह कथन सत्य है।”

इस कथन की पुष्टि अनुमान के आधार पर किया गया है जो कि स्वयं ही असिद्ध है। इसलिए वह दूसरे को भी सिद्ध नहीं कर सकता है (स्वयं असिद्धः कथं परान् साध्यति) अर्थात् जो स्वयं ही असिद्ध है वह दूसरे को सिद्ध कैसे कर सकता है? इसके साथ ही साथ एक और समस्या खड़ी हो जाती है कि आप्त पुरुष या विश्वसनीय व्यक्ति कैसे प्राप्त हो सकते हैं? ऐसे विश्वसनीय व्यक्ति को पाना बिल्कुल कठिन कार्य है। यदि विश्वसनीय व्यक्ति मिल भी जाय तो प्रश्न है कि इनके कथन को सत्य क्यों माना जाय? विश्वास के आधार पर किसी बात या चीज को सत्य मानना हास्यास्पद है। अतः श्रुति के आधार पर किसी वस्तु या कथन को प्रामाणिक मानना सही नहीं है। चार्वाक के अनुसार विश्वास के अलावा उन लोगों के पास कोई तर्क नहीं है। इसके लिए यदि कोई अनुमान का सहारा लेते हैं तो चार्वाक ने अनुमान को पहले ही यथार्थ ज्ञान के साधन के रूप में अस्वीकार कर दिया है। चार्वाक का यह भी कहना है कि सत्य ज्ञान देना शब्द का आवश्यक एवं अनिवार्य गुण नहीं है इसलिए शब्द को यथार्थ ज्ञान का स्वतंत्र साधन नहीं माना जा सकता है।

शब्द का खंडन

शब्द को जिन लोगों (विचारकों) ने यथार्थ ज्ञान का स्वतंत्र प्रमाण माना है उनके पास इसे सिद्ध करने के लिए विश्वास या अन्तर्दृष्टि (अनुभूति) के अलावा कोई जवाब नहीं मिलता है। चार्वाक के लिए इस प्रकार का विश्वास या

अनुभूति पागलों के प्रलाप से अधिक नहीं है। अतः शब्द को स्वतंत्र प्रमाण नहीं कहा जा सकता है। चूँकि यह प्रत्यक्ष पर निर्भर है।

चार्वाक ने बौद्धिक शब्दों को भी यथार्थ ज्ञान के साधन के रूप में अप्रामाणिक सिद्ध किया है। इसे अप्रामाणिक सिद्ध करने के लिए उन्होंने निम्नलिखित तर्कों का सहारा लिया है—

(क) वेदों में अनेकार्थक, अस्पष्ट एवं अबौद्धिक शब्दों अथवा वाक्यों की भरमार है इसलिए इनमें या इनके द्वारा सत्य ज्ञान की आशा करना व्यर्थ है। इन बौद्धिक वाक्यों के विभिन्न अवसरों पर विभिन्न अर्थ लगाये जाते हैं। इसलिए इनके आधार पर यथार्थ एवं निश्चित ज्ञान नहीं प्राप्त किया जा सकता है। उदाहरण के लिए वेद में एक जगह कहा गया है—पत्थर जल में तैरता है, जो असंभव है। अतः वेद में कुछ ऐसे शब्द हैं जो अनेकार्थक, व्याघातक, अस्पष्ट तथा असंगत हैं।

(ख) वेदों की रचना धूर्त ब्राह्मणों ने अपने स्वार्थ की सिद्धि के लिए की है। वेदों की सहायता लेकर पुरोहित सीधी—सादी जनता अथवा भोले—भाले लोगों की आंख में धूल झाँककर अपना उल्लू सीधा करते हैं। भोली—भाली जनता को स्वर्ग का प्रलोभन तथा नरक का भय दिखलाकर उनसे मनमानी दक्षिणा वसूल करना पंडितों का मुख्य उद्देश्य या प्रयोजन रहा है। अतः वैदिक वाक्य इन धूर्त ब्राह्मणों की स्वार्थ—सिद्धि के साधन हैं। इनके द्वारा यथार्थ ज्ञान की प्राप्ति तो नहीं होती किन्तु ब्राह्मणों की रोजी—रोटी अवश्य चलती है। इसलिए तो सर्वदर्शन संग्रह में कहा गया है—त्रयोवेदस्य कर्तारो भण्ड धूर्त निशाचराः।⁴ अतः चार्वाक वैदिक शब्दों को यथार्थ ज्ञान का साधन नहीं मानते हैं। ये शब्द को एविडेन्स अथवा गवाही या साध्य अथवा प्रमाण के रूप में स्वीकार नहीं करते हैं।⁵

(ग) वैदिक कर्मकाण्ड में वर्णित रीति रिवाज, हवन, यज्ञ, दान दक्षिणा, पूजापाठ आदि का मुख्य लक्ष्य ब्राह्मणों को यजमानों से मनमाना दान, दक्षिणा वसूल करने का अधिकार दिलाना है। दान, दक्षिणा आदि के द्वारा पुरोहित लोगों को स्वर्ग में स्थान दिलाने का दावा करके अपनी स्वार्थपरता का उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। इन्हीं कारणों से चार्वाक वैदिक शब्दों को यथार्थ ज्ञान का साधन नहीं मानते हैं।

यदि वैदिक शब्द ही यथार्थ ज्ञान दिलाने में असमर्थ हैं तो फिर लौकिक शब्दों को ज्ञान का साधन मानना व्यर्थ ही है।

उपमान का खंडन

प्रत्यक्ष, अनुमान और शब्द प्रमाण के द्वारा व्याप्ति की स्थापना को व्यर्थ सिद्ध कर चुकने के बाद उपमान प्रमाण का नाम आता है। अब प्रश्न उठता है कि उपमान क्या है? संज्ञा-संज्ञी सम्बन्ध को उपमान कहते हैं। दूसरे शब्दों में नाम और नामी के सम्बन्ध के ज्ञान को ही उपमान कहा जाता है। अन्य प्रमाणों, यथा-अनुमान और शब्द के तरह ही चार्वाक के अनुसार उपमान भी किसी न किसी रूप में प्रत्यक्ष और अनुमान पर ही आश्रित है। इसके साथ ही साथ इसमें नामी का यथार्थ ज्ञान नहीं मिल सकता है। उपाधिरहित सम्बन्ध (व्याप्ति) का बोध करना अथवा कराना उसके लिए संभव नहीं है। अतः यह प्रमाण भी स्वतंत्र नहीं है। इससे यथार्थ ज्ञान की प्राप्ति नहीं हो सकती है।

अर्थापत्ति का खंडन

इसका खंडन करने से पहले यह जानना आवश्यक है कि अर्थापत्ति किसे कहते हैं? जब कोई ऐसी घटना देखें जो बिना किसी दूसरी घटना की कल्पना किये समझ में न आये तो कल्पना की गई घटना अर्थापत्ति कहलाती है। यह प्रमाण भी दूसरे प्रमाण की अपेक्षा रखती है। इससे यथार्थ ज्ञान की प्राप्ति नहीं हो सकती है। इसे स्वतंत्र प्रमाण कहना हास्यस्पद है। चार्वाक के अनुसार यह प्रमाण मात्र कल्पना है। इसे यथार्थ कहना अयुक्तिसंगत है।

अनुपलब्धि का खंडन

किसी विषय के अभाव के साक्षात् ज्ञान को ही अनुपलब्धि कहते हैं। जैसे जहाँ घट नहीं मिलता, वहाँ घटाभाव का अनुमान है, क्योंकि यदि घट होता तो जरूर मिलता। यह प्रमाण प्रत्यक्ष प्रमाण पर ही निर्भर करता है। अब स्पष्ट है कि इसके द्वारा भी व्याप्ति की स्थापना नहीं हो सकती है चूँकि चार्वाक ने पहले ही स्वीकार किया है कि प्रत्यक्ष के द्वारा भी व्याप्ति की स्थापना नहीं हो सकती है।

उपर्युक्त विवेचनों से स्पष्ट हो जाता है कि व्याप्ति की स्थापना किसी भी प्रकार संभव नहीं है। हम जानते हैं कि अनुमान तथा अन्य प्रमाणों का आधार

किसी न किसी प्रकार व्याप्ति ही है और व्याप्ति की स्थापना किसी भी प्रकार से संभव नहीं है। न प्रत्यक्ष के आधार पर, न अनुमान, न शब्द, न बाकी तीनों प्रमाण (उपमान, अर्थापत्ति और अनुपलब्धि), न प्रकृति समरूपता-नियम और न कार्य-कारण-नियम के आधार पर ही इसकी स्थापना हो सकती है।

ज्ञान मीमांसा की समीक्षा

भावात्मक पक्ष का खण्डन—चार्वाक ने प्रत्यक्ष को भी संकुचित अर्थ में ही समझा है, चूँकि हम जानते हैं कि प्रत्यक्ष का क्षेत्र उतना ही नहीं है जितना कि चार्वाक मानते हैं। न्याय आदि दर्शनों में अलौकिक प्रत्यक्ष को भी स्वीकार किया गया है। चार्वाक अलौकिक प्रत्यक्ष को नहीं मानते हैं तो फिर सामान्य लक्षण प्रत्यक्ष, ज्ञान लक्षण एवं योगज को मानने का प्रश्न ही नहीं है क्योंकि ये तीनों भेद अलौकिक प्रत्यक्ष के ही हैं। योगज (अन्तर्दृष्टि) की महत्ता को चार्वाक के अतिरिक्त अन्य दार्शनिकों ने अपने ढंग से स्वीकार किया है। अतः चार्वाक को इस प्रत्यक्ष की महत्ता को अस्वीकार नहीं करना चाहिए था।

अगर लौकिक प्रत्यक्ष के अतिरिक्त अन्य प्रमाण अनिश्चित होता है तो प्रत्यक्ष को भी निश्चित बतलाना कठिन ही है। रामानुजाचार्य के शिष्य वेंकटनाथ ने भी इनकी (चार्वाक) ज्ञान मीमांसा की कटु आलोचना की है। उनके अनुसार निश्चित ज्ञान के अभाव में अनुमान को यदि अप्रामाणिक माना जाता है तो प्रत्यक्ष को भी संदिग्ध मानना पड़ेगा, क्योंकि उसमें भी निश्चित ज्ञान का अभाव है। वस्तुतः प्रत्यक्ष में भी भ्रम होता है। जैसे रस्सी का सर्प के रूप में दिखाई पड़ना, रेल की पटरियाँ बहुत दूर में एक दूसरे से मिलती हुई प्रतीत होना, आकाश का बहुत दूर में गिरता हुआ दिखाई पड़ना आदि इसके उदाहरण हैं। पाश्चात्य दार्शनिक देकार्त आदि ने इन्द्रिय अनुभव पर भी संदेह व्यक्त किया है। यानी प्रत्यक्ष ज्ञान को भी असंदिग्ध नहीं कहा जा सकता है।

ज्ञान मीमांसा के निषेधात्मक पक्षों का खंडन

1. भारत के बौद्ध दार्शनिकों के अनुसार जिस व्याप्ति के लिए चार्वाक ने कहा है कि व्याप्ति या अविनाभाव दुर्बोध है, तर्कसंगत नहीं है। चूँकि व्याप्ति का ज्ञान तादात्म्य तथा तदुत्पत्ति के द्वारा आसानी से संभव है, जैसा कि कहा भी गया है—“कार्य-कारण-भाव से अथवा नियामक स्वभाव से व्याप्ति का निर्माण होता है। दूसरी बात चार्वाक केवल इतना ही कहकर चुप हो जाते हैं कि अनुमान प्रमाण नहीं है। यदि इसे मान लिया जाए तो उनका कहना कि “स्त्री

गमन से उत्पन्न सुख ही पुरुषार्थ है” अब प्रश्न है कि यह कथन वर्तमान काल तक ही सीमित रहेगा या अन्य कालों के लिए भी सत्य ठहरेगा। अगर ये बातों सभी कालों के लिए कही गई हैं तो उनका उक्त कथन (अनुमान प्रमाण नहीं है) गलत प्रमाणित होता है। इस बात को चार्वाकानुयायी पहले भी मानते थे और आज भी मान रहे हैं तो निश्चित रूप में वे अनुमान की सत्ता को स्वीकार करते हैं।

2. बौद्ध दार्शनिकों का कहना है कि चार्वाक केवल अनुमान से ही यह जानते हैं कि अन्य मतावलंबी अनुमान को मानते हैं। अतः चार्वाक के द्वारा अनुमान का खण्डन स्वयं अनुमान पर आश्रित है। दूसरे के विचार को इन्द्रिय प्रत्यक्ष से नहीं जाना जा सकता है। यह केवल अनुमान का विषय है, अतः चार्वाक अनुमान का खण्डन नहीं कर सकते हैं।

3. नैयायिक के अनुसार चार्वाक न तो अपने मत का इतना विधिवत कथन किया था और न उसकी सत्यता को दूसरे से स्वीकार कराने का प्रयत्न ही किया था। बल्कि केवल प्रतिवादियों के मत का खंडन ही उसका उद्देश्य रहा “वैतण्डिक कथेवासो न पुनः कश्चिदागमः” (न्याय मंजरी)

4. अनुमान की अनुपस्थिति में अनुमान का खण्डन करना न्यायसंगत नहीं है। चूँकि जब वे इसकी स्वतंत्र सत्ता में विश्वास ही नहीं करते हैं, तब फिर इसकी आलोचना करना वैसा ही महसूस होता है जैसा कि कोई कहे, आकाश कुसुम सुगन्धित है। तो यहाँ हम देखते हैं कि आकाश में कुसुम है ही नहीं तो फिर सुगन्धित और दुर्गन्धित (असुगन्धित) कहने का कोई अर्थ नहीं रह जाता है। अतः चार्वाक जब अनुमान को प्रमाण मानते ही नहीं है तो फिर उसे प्रामाणिक और अप्रामाणिक कहने का भी कोई अर्थ नहीं बैठता है।

वस्तुतः अनुमान ज्ञान प्राप्ति का एक महत्वपूर्ण साधन है। तर्क-वितर्क, खण्डन-मण्डन आदि अनुमान पर ही आधारित हैं। अनुमान करना मनुष्य के विवेकशील अथवा बुद्धिमान या तर्कशील होने का परिचायक है। अगर अनुमान को हम ज्ञान का साधन नहीं मानते हैं तो फिर मानव को बुद्धिमान या विवेकशील प्राणी नहीं कहा जा सकता है। इस विवेक गुण के अभाव में मनुष्य मनुष्य न रहकर पशु बन जायेगा। इसलिए अनुमान का बहिष्कार मानव के लिए आत्महत्या के समान है।

5. व्याप्ति के खंडन का सभी अवस्थाओं में निश्चय नहीं किया जा सकता है। चार्वाक अनुमान आदि प्रमाणों के द्वारा व्याप्ति की स्थापना को असंभव बतलाते हैं। अगर इस कथन को सत्य मान लिया जाए तो वह क्षमा

करने वाली बात हो सकती है लेकिन अगर निरीक्षण और प्रयोग के आधार पर भी व्याप्ति सम्बन्ध को अस्वीकार करते हैं तो यह उनकी हठवादिता व मूर्खता होगी। दूसरी बात अगर व्याप्ति को वे उपाधि पर आधारित मानते हैं और इसलिए उसके आधार पर किसी को कारण और कार्य मानने को तैयार नहीं होते हैं, यह भी संकुचित दृष्टिकोण का परिचायक है। चार्वाक का मत स्वयं उपाधि पर आधारित है, अतः उनके मत को निरुपाधिक नहीं कहा जा सकता है।

इस तरह हम देखते हैं कि चार्वाक एक ओर अनुमान का खंडन तो करते हैं पर उसे अन्तिम तक निभा नहीं पाते हैं। यानी एक तरफ उसका निषेध करते हैं और दूसरी ओर उसको ग्रहण करते हैं। दूसरे के विचारों को ग्रहण करने में और उन तक अपने विचारों को पहुँचाने में वे अनुमान की सहायता लेते हैं। वे आत्मा, परमात्मा, स्वर्ग, नरक, पुनर्जन्म का खंडन करने के लिए अनुमान का ही आश्रय लेते हैं। इस प्रकार चार्वाक अनुमान के खण्डन का एक तरफ प्रयास करते हैं तो दूसरी तरफ इसको भीतरी दरवाजे से अपना लेते हैं। अतः वे केवल ढोंग रचते हैं कि हम अनुमान को प्रामाणिक नहीं मानते हैं।

इस विषय में यहाँ यही कहा जा सकता है कि सर्वप्रथम तो चार्वाकों के पास अनुमान को प्रमाण नहीं मानने के लिए कोई प्रमाण ही नहीं है, क्योंकि अनुमान, उपमान, शब्द अर्थापत्ति, अनुपलब्धि, प्रकृति-समरूपता-नियम और कार्य-कारण-नियम को तो वे मानते नहीं है। अकेले प्रत्यक्ष के आधार पर उनका कथन सिद्ध नहीं होता है। चार्वाक के व्यवहार से भी यही सिद्ध होता है कि उनका मस्तिष्क उनको अविनाभाव, या व्याप्ति सम्बन्ध को मानने के लिए मजबूर करता है। चार्वाकानुयायियों के घर में भात, दाल, रोटी आदि प्रकार के भोजन इसलिए पकते या बनते होंगे कि उन्होंने अनुमान से जान लिया है कि भूख अवश्य लगेगी और इसके लिए भोजन की आवश्यकता है। रोटी या भात दाल खाने और भूख निवारण होने में जो व्याप्ति सम्बन्ध है, वह भूत और भविष्य के लिए भी उतना ही ठीक है, जितना की प्रत्यक्ष के लिए। प्रत्येक मनुष्य अपनी जीवन यात्रा के सभी कार्यों को अनुमान के सहारे ही करता है। अतः अनुमान प्रमाण को असिद्ध प्रमाणित करना अनुचित है।

अनुमान प्रमाण आप दे नहीं सकते, क्योंकि आपने अनुमान को प्रमाण नहीं माना है, दूसरी बात ऐसी है कि चार्वाक यदि अनुमान को प्रमाण नहीं मानता तो वह दूसरे की असहमति, सहमति, संशय, विपरीत ज्ञान और अज्ञान को केवल प्रत्यक्ष के सहारे कैसे समझेगा.....मुँह की आकृति, व्यवहार और वाणी

से दूसरों के मनोभावों को अनुमान के द्वारा समझा जा सकता है। इस प्रकार न चाहते हुए भी उसके सिर पर अनुमान को प्रमाण मानने का बोझ आ जाता है, क्योंकि ये सब अनुमान के ही प्रकार हैं।

शब्द—इसको यथार्थ ज्ञान के रूप में अस्वीकार करने का मुख्य कारण या उद्देश्य चार्वाक यह बतलाते हैं कि इससे सदैव निश्चित तथा सही ज्ञान नहीं मिलता है। वस्तुतः शब्द ज्ञान कभी-कभी धोखा देता है यानी कभी-कभी अनिश्चित, असत्य एवं संदेहात्मक होता है। किन्तु इसी आधार पर इसे ज्ञान का साधन नहीं मानना उचित नहीं है। हम अपने अनुभव के दौरान कभी-कभी प्रत्यक्ष ज्ञान को भी दूषित एवं असत्य पाते हैं। रस्सी को सर्प समझना, पृथ्वी को चिपटी देखना आदि इसके उदाहरण कहे जा सकते हैं। वास्तव में रस्सी सर्प नहीं है, पृथ्वी चिपटी नहीं है, वह तो नारंगी के समान गोल है। इस आधार पर प्रत्यक्ष को यथार्थ ज्ञान के साधन के रूप में अस्वीकार नहीं किया जा सकता है और यदि प्रत्यक्ष ज्ञान अनिश्चित एवं दोषपूर्ण होने पर भी ज्ञान का साधन माना जाता है तो फिर शब्द को भी इसी के आधार पर ज्ञान का साधन के रूप में स्वीकार करने में क्या हर्ज है?

चार्वाक ने वैदिक शब्दों के विरुद्ध जिहाद बोलते हुए इनके रचयिताओं को धूर्त, पाखण्डी, ढोंगी, निशाचर, स्वार्थी आदि अनेकों बुरी संज्ञा या विशेषण से विभूषित किया है। यह एक प्रकार की गलती ही है। वैदिक ऋषि-मुनि वास्तव में स्वार्थ, ढोंग, पाखंड आदि से परे थे। ऐसे अनेकों संकेत मिलते हैं, जिसके आधार पर कहा जा सकता है कि उनका सम्पूर्ण जीवन वसुधैव कुटुम्बकम्, जनकल्याण, लोकसंग्रह तथा निःस्वार्थ भावना से ओत-प्रोत था। उन्हें भेदी गालियां अथवा भला-बुरा कहना चार्वाक जैसे विचारक को शोभा नहीं देता है।

चार्वाक ने अनुमान आदि प्रमाणों को अस्वीकार कर तथा प्रत्यक्ष को ज्ञान प्राप्ति का एकमात्र साधन बतलाकर ज्ञान के क्षेत्र को संकुचित बना दिया है, जैसा कि उपर्युक्त कथन से स्पष्ट है। हम जानते हैं कि भूत और भविष्य का प्रत्यक्ष असंभव है। वर्तमान जीवन में भी सभी विषयों का प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त करना संभव नहीं है। अतः यह स्पष्ट ही है कि प्रत्यक्ष को ही यदि ज्ञान का एकमात्र साधन माना जाए और अन्य साधनों (जैसे—अनुमान, शब्द उपमान, अर्थापत्ति और अनुपलब्धि) का बहिष्कार किया जाय तो ज्ञान की सीमा अत्यन्त ही संकीर्ण हो जायेगी। अतः हठपूर्वक चार्वाक ने प्रत्यक्ष को ज्ञान प्राप्ति का एकमात्र साधन बतलाकर ज्ञानमीमांसा के क्षेत्र को अत्यन्त ही सीमित कर दिया है। हम आज भी

शास्त्र या अन्य पुस्तकों की सहायता से ही कुछ कह पाते हैं। अतः इसकी आलोचना करना ठीक नहीं है।

तत्त्व मीमांसा

किसी भी तत्त्वमीमांसा में मुख्यतः तीन विषयों पर विचार किया जाता है—विश्व, आत्मा और ईश्वर। चार्वाक तत्त्वमीमांसा में भी इन तीनों विषयों पर विचार किया गया है। इसलिए इन पर अलग-अलग इनका (चार्वाक का) मत प्रस्तुत करना आवश्यक है। इन विषयों पर विवेचन प्रस्तुत करने के पूर्व यह बतलाना आवश्यक है कि चार्वाक की तत्त्वमीमांसा किस पर आधारित है? चार्वाक की तत्त्वमीमांसा इनकी ज्ञानमीमांसा पर निर्भर है। दूसरे शब्दों में चार्वाक की ज्ञानमीमांसा इसकी तत्त्वमीमांसा की आधारशिला है। इनके अनुसार प्रत्यक्ष ही यथार्थ ज्ञान का एकमात्र साधन है। जैसाकि उपर्युक्त विवेचनों से स्पष्ट है। इन्होंने उन्हीं वस्तुओं या विषयों को वास्तविक अथवा यथार्थ माना है, जिनका प्रत्यक्षीकरण संभव है। प्रत्यक्ष केवल भौतिक वस्तुओं का होता है। अतः चार्वाक के अनुसार जड़ या भूत ही मूल तत्त्व है। इसलिए इनके दर्शन को भौतिकवादी कहा जाता है। भौतिकवाद की मूल मान्यता है कि दुनियां की सारी वस्तुओं की उत्पत्ति भौतिक तत्त्वों से हुई है। उन उत्पन्न वस्तुओं या जीवों के विनाश या वियोग के बाद भी भौतिक वस्तुओं की ही सत्ता रहती है, चूंकि जिनसे उनकी उत्पत्ति हुई, पुनः विनाश के बाद वे वस्तुएं उन्हीं तत्त्वों में लौट जाती हैं। अग्नि तत्त्व वापस आकर अग्नि में मिल जाता है, वायवीय तत्त्व वायु में मिल जाता है, पार्थिव तत्त्व वापस आकर पृथ्वी के अन्दर समा जाता है। डॉ. राधाकृष्णन् के शब्दों में “मनुष्य चार तत्त्वों से मिलकर बना है। जब मनुष्य मरता है तो पार्थिव तत्त्व लौटकर पृथ्वी के अन्दर फिर से आ मिलता है। जलीय तत्त्व जल में वापस मिल जाता है, अग्नि तत्त्व वापस आकर अग्नि में मिल जाता है और वायवीय तत्त्व फिर वायु में मिल जाता है। इन्द्रियां देश के अन्दर समा जाती हैं। बुद्धिमान और मूर्ख एक समान, जब शरीर छिन्न-भिन्न होता है, नष्ट हो जाते हैं और आगे के लिए उनकी सत्ता नहीं रहती।”⁶ रीज डेविड्स ने भी अपनी प्रसिद्ध पुस्तक ‘डायलॉग्स ऑफ बुद्ध’ में इसकी चर्चा की है।⁷

चार्वाक दर्शन के अनुसार चेतना इस पार्थिव शरीर का ही एक गुण है, जो शरीर के नष्ट होने के साथ ही नष्ट हो जाती है। इनके अनुसार सभी व्यापार प्राकृतिक हैं। हम न तो अनुभव में और न इतिहास में ही अलौकिक शक्तियों का हस्तक्षेप पाते हैं। अतः पदार्थ ही एकमात्र यथार्थ सत्ता है और

मस्तिष्क या चेतना विचारपूर्ण पदार्थ है। एक स्रष्टा की बात सोचना या कल्पना करना इस जगत् की व्याख्या करने या इसे समझाने के लिए व्यर्थ ही है। डॉ. दक्षिणा रंजन शास्त्री ने 'ए शॉर्ट हिस्ट्री ऑफ इण्डियन मैटीरियलिज्म एण्ड हेडोजिज्म' नामक पुस्तक में बतलाया है कि "अग्नि गर्म है, पानी ठंडा है, चाँदनी रात में चलने वाली हवा अत्यन्त स्फूर्तिदायक है। यह विविधता कहाँ से आती है? यह विविधता स्वयं इन वस्तुओं की प्रकृति से उत्पन्न है।"⁸ यानी प्रकृति का स्वभाव ही ऐसा है कि वह अपने आप दुनियाँ की सृष्टि कर देता है। इसके लिए वह किसी भी बाह्य सत्ता की मदद नहीं लेती है। वह स्वयं ही इस कार्य के लिए सक्षम है। उपर्युक्त विवेचनों के आधार पर चार्वाक के स्वभाववाद, प्रकृतिवाद और जड़वाद स्पष्ट हो जाता है। इस सिद्धान्त में भूत या जड़ तत्त्व को ही चरम सत्ता के रूप में स्वीकार किया गया है।

अब स्पष्ट है कि चार्वाक के स्वभाववाद के अनुसार वस्तुएँ जैसी भी हैं और रहेगी अपने स्वभाव के कारण ही। सृष्टि के परमाणुओं में (किसी अन्य शक्ति का न दिया हुआ) स्वयं अपना एक स्वभाव है और उसी स्वभाव से प्रेरित होकर वह विशेष रीति से संयुक्त या वियुक्त होते हैं। यहाँ एक बात स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि स्वभाववादियों, कुदरतवादियों और यदृच्छावादियों में कुछ समानता अवश्य है फिर भी दोनों एक नहीं हैं। यदृच्छावादी सिद्धान्त के अनुसार यह जगत् किसी स्रष्टा या किसी रचनाकार की सृष्टि नहीं है। यह सिद्धान्त अलौकिक सत्ता अथवा ब्रह्म की अवधारणा का निषेध करता है। मनुष्य, पक्षियों और पशुओं के अलग-अलग स्वभाव, गन्ने में मिठास, नीम के वृक्ष में कड़वाहट—ये सब आकस्मिक हैं और किसी बाह्य या बाहरी सत्ता की रचना नहीं है। स्वभाववादी इनके इस मत का खण्डन करते हैं। इस सम्बन्ध में एम. हिरियन्ना का कहना है कि 'एक (अर्थात् यदृच्छावाद) जहाँ यह कहता है कि यह संसार अराजकता से परिपूर्ण है और इसमें जो नियमानुकूलता है, वह केवल आकस्मिक हैं, वहाँ दूसरा (अर्थात् स्वभाववाद) यह मानता है कि वस्तुएँ जैसी भी हैं, अपने स्वभाव के कारण हैं। अब स्पष्ट है कि पहला जहाँ कारण को नकारता है, वहीं दूसरा कारण की सार्वभौमिकता को स्वीकार करता है, किन्तु प्रत्येक परिवर्तन को उस वस्तु की अंतर्निहित प्रकृति के परिणामस्वरूप या फलस्वरूप बताता है। इस प्रकार यदृच्छावाद और स्वभाववाद में अन्तर है।

अब हम चार्वाक के तत्त्वमीमांसा के तीन विषयों (विश्व, आत्मा और परमात्मा) पर विचार करेंगे।

चार्वाक का विश्व सम्बन्धी विचार

चार्वाक प्रत्यक्ष को ज्ञान का एकमात्र साधन मानता है। विश्व का प्रत्यक्ष होता है इसलिए इनके अनुसार विश्व वास्तविक है। अब प्रश्न उठता है कि विश्व की उत्पत्ति किन-किन तत्त्वों से हुई है? चार्वाक को छोड़कर अन्य भारतीय दार्शनिक इस प्रश्न के उत्तर में बतलाते हैं कि इस विश्व की सृष्टि पांच तत्त्वों (पृथ्वी, पानी, वायु या हवा, अग्नि और आकाश) से हुई है। श्रीरामचरितमानस में भी कहा गया है—‘छिति जल पावक गगन समीरा। पंच रचित अति अघम शरीरा।’⁹ चार्वाक दर्शन इनमें केवल चार तत्त्वों को ही विश्व का निर्मायक तत्त्व को मानता है क्योंकि इसका प्रत्यक्ष ज्ञान होता है। आकाश के अतिरिक्त चारों तत्त्व भौतिक हैं। इन्हीं तत्त्वों से सभी वस्तुएँ उत्पन्न हुई हैं। पुनः इन तत्त्वों के विघटन होने से विश्व का नाश हो जाता है। प्राण, चेतना आदि भी भौतिक तत्त्वों से ही उत्पन्न हुए हैं। अतः विश्व का आधार जड़ तत्त्व ही है। विश्व के निर्माण के लिए भूतों के अतिरिक्त किसी दूसरी सत्ता को मानना अनुचित है। ये विश्व को भूतों के आकस्मिक संयोग का फल मानते हैं।

उपर्युक्त बातों से यह स्पष्ट हो जाता है कि चार्वाक दर्शन सृष्टिवाद में विश्वास नहीं करता है और साथ ही साथ यह भी बतलाया है कि दुनियाँ की सारी वस्तुओं की उत्पत्ति जड़ तत्त्वों के अन्तर्निहित स्वभाव के कारण ही होता है। इन्होंने विश्व के रचयिता के रूप में ईश्वर या किसी अन्य अलौकिक सत्ता को नहीं माना। इसके अनुसार जैसा कि उपर्युक्त कथन से स्पष्ट है कि प्रकृति और प्राकृतिक नियम ही विश्व की उत्पत्ति की व्याख्या के लिए पर्याप्त है। इसीलिए इस दर्शन को प्रकृतिवादी कहा जाता है। पाश्चात्य जर्मन दार्शनिक फायरबाख ने भी भौतिक वस्तुओं से ही दुनियाँ की सृष्टि या उत्पत्ति बतलाई है और इसके साथ ही साथ इन्होंने विश्व प्रक्रिया को यंत्रवत भी बतलाया है। इन्होंने प्रकृति का अस्तित्व मनुष्य पर निर्भर नहीं माना है। वह (प्रकृति)..... प्रथम, आद्य वस्तुगत यथार्थ है।’¹⁰ अतः इन दोनों दार्शनिकों में बहुत कुछ समता है। इनके अनुसार विश्व प्रक्रिया में किसी प्रकार का उद्देश्य या प्रयोजन नहीं है। चार्वाक ने भी यन्त्रवाद का समर्थन करते हुए विश्व की व्याख्या के निमित्त वस्तुवाद को अंगीकार किया है। आदर्शवाद से भिन्न इनका सिद्धान्त है। जहाँ आदर्शवाद चेतना या आत्मा को प्राथमिक मानता है। इनके अनुसार वस्तु ही दुनियाँ का आदि और अन्त है। यानी संसार का भौतिकवादी और वस्तुवादी आधार प्रस्तुत करता है।¹¹ इसका मतलब यह नहीं कि वह इनका पूर्णरूप से

विरोध करता है बल्कि सच पूछा जाय तो यह आदर्शवाद का प्रतिवाद है। देवीप्रसाद चट्टोपाध्याय ने भी इस तथ्य का समर्थन किया है।¹²

आत्मा सम्बन्धी विचार

भारतीय दर्शन में आत्मा के सम्बन्ध में विभिन्न धारणाएँ दीख पड़ती हैं। कुछ दार्शनिकों ने चैतन्य को आत्मा का मूल लक्षण या स्वरूप माना है तो कुछ ने चैतन्य को आत्मा को आगन्तुक लक्षण माना है। जिन लोगों ने चैतन्य को आत्मा का मूल लक्षण माना है, उनके अनुसार आत्मा स्वभाव से ही चेतन है। जैसे जैनदर्शन में बतलाया गया है—चेतना लक्षणोजीव। वेदान्त में भी स्वरूप लक्षण को ही वास्तविक माना गया है। कहने का तात्पर्य यह है कि चेतना किसी काल विशेष या परिस्थिति विशेष में नहीं आती है बल्कि उसमें सभी कालों में विद्यमान रहती है अतः वह चेतन स्वरूप ही है। जिन लोगों ने चेतना को आत्मा का आगन्तुक लक्षण माना है। उन लोगों का कहना है कि आत्मा स्वभावतः चेतन नहीं है। चेतना का संचार आत्मा में परिस्थिति विशेष में हो जाता है। अर्थात् जब आत्मा का सम्बन्ध मन, इन्द्रिय और शरीर से होता है। इस तरह के मत न्याय और वैशेषिक दर्शन में प्रस्तुत किया है। चार्वाक दर्शन में भी चेतना को आकस्मिक गुण ही बतलाया है। फिर भी दोनों में बहुत अन्तर है एक ओर जहाँ न्याय और वैशेषिक दार्शनिक ने ईश्वर को निमित्त कारण के रूप में स्वीकार किया है, वहीं चार्वाक स्वभाववादी सिद्धान्त के आधार पर चेतना की व्याख्या करता है। फिर भी कुछ समताएँ अवश्य हैं तभी तो देवीप्रसाद चट्टोपाध्याय ने इन्हें आदर्शवाद को वाद और भौतिकवाद को प्रतिवाद ठहराया है। यानी परिमाण का अन्तर है, गुण का नहीं। फिर भी समानता के अपेक्षा अन्तर अधिक है, वह है लक्ष्य को लेकर, जिसका यहाँ जिक्र करना आवश्यक नहीं है। फिर भी इतना बतला देना आवश्यक प्रतीत होता है कि चार्वाक चैतन्य का निषेध नहीं किया है बल्कि वह इसे मानता है¹³ क्योंकि चेतना का प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त होता है।

प्रत्यक्ष दो प्रकार का होता है—बाह्य और आन्तरिक प्रत्यक्ष। बाह्य प्रत्यक्ष से बाह्य जगत् का ज्ञान होता है, जैसे—नाक से गंध, त्वचा से स्पर्श, कान से शब्द, जीभ से स्वाद, आँख से रंग का और आन्तरिक प्रत्यक्ष से आन्तरिक जगत् का ज्ञान होता है, जैसे—सुख दुःख आदि। अतः चैतन्य प्रत्यक्ष का विषय है। साधारणतः सभी भारतीय दार्शनिक जहाँ चेतना को आत्म का गुण न मानकर शरीर का गुण मानते हैं। अब प्रश्न उठता है कि भौतिक तत्त्वों से निर्मित शरीर में चेतना कहाँ से आती है, जब इन तत्त्वों में चेतना का पहले से अभाव रहता

है? चार्वाक इसका उत्तर एक उपमा की सहायता से देते हैं। जिस प्रकार कसैली चूने और पान में लाल रंग का अभाव है किन्तु इन्हें साथ-साथ चबाने से लाल रंग की पीक बन जाती है ठीक उसी प्रकार भौतिक तत्त्वों में चेतना का अभाव रहने पर भी इनके संयोग से चेतना का उदय होता है। डॉ. राधाकृष्णन् के शब्दों में “वह बुद्धि जो अचेतन अवयवों की परिवर्तित आकृतियों के अन्दर निहित पाई जाती है, ठीक उसी प्रकार से उत्पन्न होती है, जिस प्रकार पान की पत्ती, सुपारी, कत्था और चूना के परस्पर सम्मिश्रण से लाल रंग पैदा होता है। जिस प्रकार कुछ उपकरणों के परस्पर सम्मिश्रण से उनके अन्दर नशा उत्पन्न कर देने वाली शक्ति उत्पन्न हो जाती है, उसी प्रकार से चार तत्त्वों के परस्पर संयोग से चेतना उत्पन्न हो जाती है। चार तत्त्वों के उपस्थित रहने पर चेतना स्वतः उनके अन्दर से प्रकट हो जाती है, ठीक जैसेकि अलादीन के चिराग को रगड़ने से राक्षस प्रकट हो जाता था। विचार प्रकृति की ही एक प्रक्रिया है।¹⁴ अतः विचार का अपना अलग-अलग स्थान नहीं है बल्कि प्रकृति की ही एक प्रक्रिया है। मस्तिष्क क्षरण क्रिया के सहारे विचार को उसी प्रकार से पैदा करता है जिस प्रकार जिगर से पित्त क्षरित होता है। कहनेका तात्पर्य यह है कि शरीर से अलग या भिन्न किसी आत्मा अथवा चेतना के अस्तित्व को स्वीकार करने की कोई जरूरत नहीं है। शरीर की अवस्था विशेष में विचार या चेतना स्वयं अपने आप यानी यंत्रवत् उत्पन्न हो जाती है। अतः शरीर का बुद्धि से युक्त होना ही पर्याप्त है। आत्मा स्वयं शरीर ही है जो कि ऐसे गुणों से पहचाना जा सकता है, जिनका संकेत है—मैं बलवान हूँ, मैं युवा हूँ, मैं वृद्ध हूँ, मैं अन्धा हूँ, मैं लंगड़ा हूँ आदि-आदि। डॉ. कृष्ण मिश्रा ने अपनी प्रसिद्ध नाटक प्रबोध चन्द्रोदय में एक पात्र के द्वारा यह बतलाया है कि आत्मा और शरीर अलग-अलग अस्तित्व की कोई साक्षी या गवाही हमें प्राप्त या उपलब्ध नहीं है चूंकि शरीर से अलग आत्मा का प्रत्यक्ष नहीं होता। शरीर से पृथक् अवस्था में विद्यमान आत्मा को किसने देखा? क्या जीवन प्रकृति की परम सापेक्षिक व्यवस्था का प्रतिफल नहीं है? चेतना या आत्मा निश्चित रूप से शरीर के सम्पर्क से ही पाई जाती है। इसलिए यह शरीर ही सब कुछ है। चार्वाक के अनुसार वे लोग (अन्य भारतीय दार्शनिक) जो यह मानते हैं कि आत्मा या आध्यात्मिक सत्ता शरीर से भिन्न है, उनके अनुसार शरीर क्षणभंगुर है, किन्तु आत्मा नित्य, चिरस्थायी एवं अमर है। गीता में भी कहा गया है जिस प्रकार व्यक्ति पुराने वस्त्र को छोड़कर नूतन वस्त्र पहनता है उसी प्रकार आत्मा एक शरीर को त्यागकर दूसरा शरीर धारण करती है। आत्मा को न शस्त्र काट सकता है, न हवा सुखा सकती है, न पानी भिगा

सकता है और न आग जला सकती है। नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः। न चैनं बलेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः॥¹⁵ अध्याय-2, श्लोक-23, शंकराचार्य ने तो आत्मा को ब्रह्म ही घोषित कर दिया है। इस प्रकार अन्य भारतीय विचारकों की दृष्टि में आत्मा अत्यधिक महत्त्व रखता है यानी आत्मा ही सब कुछ है। लेनिक चार्वाक की दृष्टि में आत्मा न अमर है और न शरीर से भिन्न ही है। यह शरीर की तरह ही नाशवान है। भस्मीभूतस्य देहस्य पुनरागमनं कुतः। वस्तुतः आत्मा का अस्तित्व है—यह प्रत्यक्ष रूप से सिद्ध या प्रमाणित करना कठिन है। इस सम्बन्ध में पार्थसारथि मिश्रा का कहना है कि आत्मा के अस्तित्व का विरोध उपस्थित होने पर स्वभावतः ही एक भीषण रूप में विवादास्पद समस्या उपस्थित हो जाती है, पर इतना तो सत्य है कि सिद्धान्त के रूप में चार्वाक मत का सप्रमाण खण्डन नहीं हो सकता क्योंकि आत्मा का अस्तित्व है—यह प्रत्यक्ष रूप से सिद्ध नहीं किया जा सकता है। तभी तो प्रो. हिरियन्ना ने चार्वाक की उन युक्तियों की, जिनके द्वारा वे आत्मा का खंडन करते हैं, सराहना करते हुए बतलाया है कि “आत्मा का जिसका भारत के अन्य दर्शनों में महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है, खंडन करने के फलस्वरूप चार्वाक घोर वाद-विवाद का विषय रहा है, परन्तु इसे मानना ही पड़ेगा कि सैद्धान्तिक रूप से चार्वाक का दृष्टिकोण खण्डन से परे है।¹⁶ चार्वाक ने आत्मा को शरीर से अभिन्न सिद्ध करने के लिए निम्नलिखित तर्कों का सहारा लिया है—

1. हम अपने अनुभव के दौरान या दैनिक जीवन में पाते हैं कि अक्सर लोग कहा करते हैं—मैं अन्धा हूँ, मैं लंगड़ा हूँ, मैं मोटा हूँ, इत्यादि। इस प्रकार के कथन से निश्चय ही आत्मा और शरीर का तादात्म्य सम्बन्ध प्रमाणित होता है। आत्मा या चेतना को शरीर से भिन्न मानने पर दैनिक जीवन के कथनों (उपर्युक्त कथनों) का कोई अर्थ नहीं रह जाता है।
2. जन्म से पहले और मृत्यु के बाद शरीर से पृथक् आत्मा के अस्तित्व का कोई आधार नहीं दीख पड़ता है। जब तक शरीर जीवित है तभी तक चेतना या आत्मा रहती है और शरीर के नष्ट होते ही चेतना भी लुप्त हो जाती है। आज तक एक भी ऐसा प्रमाण नहीं मिला है, जिसके आधार पर ऐसा कह सकते हैं कि मृत्यु के बाद आत्मा शरीर को छोड़ देती है या मृत्यु के बाद आज तक किसी ने आत्मा को शरीर छोड़ते नहीं देखा है। शरीर से पृथक् चेतना का अस्तित्व प्रत्यक्ष के परे है। इसलिए चार्वाक आत्मा

को शरीर से अभिन्न मानते हैं। यदि आत्मा और शरीर को एक न माना जाय तो मैं स्थूल हूँ, मैं बलवान हूँ, मैं अन्धा हूँ आदि वाक्यों की सिद्धि ही संभव नहीं होगी। इतना ही नहीं मेरा शरीर ऐसे जो वाक्य का प्रयोग करते हैं वे “राहु का सिर” जैसे प्रयोग के समान आलंकारिक एवं गौण है।

इन कथनों को आलंकारिक मान लेने से यह सारा समाधान अपने आप हो जाता है, क्योंकि इस कथन (राहु का सिर) में वस्तुतः राहु और उसके सिर में कोई भेद नहीं है, क्योंकि उसके शिरो भाग का नाम ही राहु है और धड़ भाग का नाम तो केतु है” अतएव अभेद होते हुए भी आलंकारिक रूप में ऐसे प्रयोग कर दिये जाते हैं, ठीक उसी प्रकार देह और आत्मा में अभेद रहते हुए भी “मेरा शरीर” इत्यादि प्रयोग होते हैं। यही चार्वाक के कथन का सार है।

उपर्युक्त विवेचनों के आधार पर यह स्पष्ट हो जाता है कि शरीर की तरह आत्मा भी नाशवान है। आत्मा के नश्वर सिद्ध हो जाने पर पुनर्जन्म का कोई प्रश्न ही नहीं उठता। मृत्यु के बाद आत्मा के स्वर्ग या नरक जाने की बात भी चार्वाक के अनुसार हास्यास्पद और मूर्खतापूर्ण है। आत्मा के नश्वर सिद्ध हो जाने पर हवन, बलिदान, यज्ञ आदि धार्मिक कृत्यों या कर्मकाण्डों का कोई महत्त्व नहीं रह जाता है। यहाँ इस विषय पर अधिक कहना उचित नहीं है चूँकि इसका विवेचन हम चार्वाक के नैतिक सिद्धान्तों के अन्तर्गत करेंगे।

ईश्वर सम्बन्धी विचार

चार्वाक ईश्वर की सत्ता को नहीं मानते हैं। चूँकि ईश्वर का कभी प्रत्यक्ष नहीं होता है, इसलिए इसको वास्तविक नहीं माना जा सकता है। ईश्वर के अस्तित्व को प्रमाणित करने वाले प्रमुख तर्कों का चार्वाक खंडन करते हैं। आत्मा की तरह ही ईश्वर का भी इन्द्रियानुभव नहीं होता है। जड़ तत्वों के सम्मिश्रण से संसार की उत्पत्ति हुई है। इसके लिए स्रष्टा या ईश्वर की कल्पना अनावश्यक है। भारतीय दार्शनिकों के अनुसार (न्याय वैशेषिक आदि) ईश्वर जगत् का निमित्त कारण है। इनके अनुसार किसी भी वस्तु के लिए उपादान के साथ-साथ निमित्त कारण की भी आवश्यकता है। मिट्टी के घड़े बनाने में मिट्टी की जरूरत है। मिट्टी घड़े का उपादान कारण है। परन्तु इस मिट्टी के अतिरिक्त एक निमित्त कारण अर्थात् कुम्भकार (बर्तन बनाने वाला) की आवश्यकता है जो मिट्टी को घड़ा का रूप देता है।

चार्वाक के अनुसार जो चार प्रकार के जड़ तत्त्व हैं, वे संसार के उपादान कारण हैं। इसके अतिरिक्त एक निमित्त कारण अर्थात् ईश्वर की आवश्यकता या जरूरत नहीं है। चूंकि जड़ तत्त्वों के अपने-अपने स्वभाव के अनुसार ही वे एक-दूसरे से मिलते हैं या संयुक्त होते हैं और उनके मेल से अपने आप संसार की उत्पत्ति होती है, इसलिए ईश्वर की आवश्यकता नहीं है। जैसा कि पहले भी बतलाया जा चुका है कि जड़ तत्त्वों के अन्तर्निहित स्वभाव के कारण ही जगत् की उत्पत्ति हो जाती है, इसीलिए चार्वाक का मत स्वभाववाद भी कहलाता है। कुछ लोग इसे यदृच्छावाद के नाम से पुकारते हैं। चूंकि इन्होंने संसार की सृष्टि के लिए किसी प्रयोजन या उद्देश्य को नहीं माना है।

चार्वाक के अनुसार जब हम देवी-देवताओं और दैत्यों के प्रकोप का सम्बन्ध किन्हीं प्राकृतिक घटनाओं से जोड़ते हैं तो हम उक्त घटनाओं की व्याख्या मिथ्यारूप में करते हैं। संसार या विश्व की व्यवस्था के लिए परमात्मा (ईश्वर) को मानना उचित नहीं कहा जा सकता है। डॉ. राधाकृष्णन् के शब्दों में “उन व्यक्तियों के लिए जो प्रकृति के पर्यवेक्षण के लिए आत्माओं के अस्तित्व का, जो एक उत्तम परमेश्वर की सत्ता का प्रमाण हो सकता था, निषेध करते हैं, यह असंभव था कि वे इतिहास की व्याख्या करते हुए यह स्वीकार करते हैं कि यह किसी बुद्धिमान सत्ता की दैवीय प्रेरणा है। ऐसे निजी अनुभवों की व्याख्या करना भी असंभव होगा। ऐतिहासिक घटनाओं के सम्बन्ध में परमेश्वर को न्याय के लिए साक्षी ठहराना और यह समझना कि सांसारिक पदार्थों की व्यवस्था परमात्मा द्वारा मनुष्य की मोक्ष प्राप्ति के लिए बनाई गई योजना मात्र है, यह सब सिवाय मक्कारी के और कुछ नहीं।”¹⁷

संक्षेप में चार्वाक के ईश्वर विरोधी तर्क को निम्नलिखित ढंग से रखा जा सकता है—

1. प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्ति का एकमात्र साधन है और प्रत्यक्ष के द्वारा ईश्वर का ज्ञान नहीं होता है। अतः ईश्वर का अस्तित्व अग्राह्य है।
2. कभी-कभी ईश्वर के अस्तित्व को सिद्ध करने के लिए अनुमान का सहारा भी लिया जाता है। न्याय-वैशेषिक आदि दार्शनिक यह तर्क प्रस्तुत करते हैं—सभी कार्यों के कारण होते हैं, विश्व भी एक कार्य है, इसलिए इसका भी कोई कारण अवश्य है और यह कारण ईश्वर है। चार्वाक जैसा कि पहले भी बतलाया जा चुका है कि अनुमान को

यथार्थ ज्ञान का साधन नहीं मानते इसलिए अनुमान पर आधारित ईश्वर सम्बन्ध में जो प्रमाण दिया गया है वह निरर्थक हो जाता है।

3. विश्व के रचयिता के रूप में भी ईश्वर की सत्ता को प्रमाणित नहीं किया जा सकता है। चूंकि प्रकृति अपने आप चार तत्त्वों (पृथ्वी, पानी, हवा और अग्नि) से विश्व का निर्माण कर लेती है, यानी इसका स्वभाव ही ऐसा है कि वे सारी वस्तुएँ अपने आप जुटकर चेतना का निर्माण कर लेती हैं और फिर वियुक्त या विनष्ट हो जाने पर उसी भौतिक वस्तुओं में विलीन हो जाती है। इसके लिए किसी अलौकिक सत्ता को मानने की जरूरत नहीं है।
4. विश्व की व्यवस्था के आधार पर भी ईश्वर का अस्तित्व सिद्ध किया जाता है। इस सम्बन्ध में चार्वाक का कहना है कि सर्वप्रथम तो यही विवादास्पद है कि विश्व व्यवस्थित है। कुछ लोग इसे अव्यवस्थित भी बतलाते हैं। इनका कहना है विश्व के व्यवस्था नाम की कोई चीज नहीं है। जैसे कहीं सुख या आनन्द है तो कहीं दुःख, कहीं अनावृष्टि है तो कहीं अतिवृष्टि आदि। यदि विश्व में व्यवस्था मान भी लिया जाय तो इसके व्यवस्थापक के रूप में किसी अलौकिक शक्ति को स्वीकार करने की कोई जरूरत नहीं है। इसकी व्याख्या स्वभाववाद के अनुसार स्वयं हो जाती है।
5. कुछ लोग वेद व श्रुति के आधार पर भी ईश्वर के अस्तित्व को सिद्ध करने का प्रयास करते हैं। चूंकि इनके अनुसार वेद प्रामाणिक और निर्दोष है इसलिए इनके आधार पर ईश्वर का अस्तित्व सिद्ध करना उचित ही है लेकिन चार्वाक का कहना है कि वेदों के आधार पर ईश्वर को सिद्ध करने और वेदों को ईश्वरकृत होने के कारण प्रामाणिक बतलाने में पुनरावृत्ति दोष पाते हैं। इसलिए वेद और श्रुति के आधार पर ईश्वर के अस्तित्व को सिद्ध नहीं किया जा सकता है।

अतः संसार में प्रजा के द्वारा स्थापित शासक ही परमेश्वर है, इससे भिन्न संसार का उत्पादक, नियामक या पालक और संहारक ईश्वर नाम की कोई वस्तु नहीं है, क्योंकि ये सभी प्रवृत्तियाँ स्वाभाविक हैं। और पुनर्जन्म भी मिथ्या ही है। शरीर का विनाश होना ही मोक्ष कहलाता है।

आचार मीमांसा

प्रारम्भ में यह कहना अनुचित नहीं होगा कि चार्वाक का भौतिकवादी दर्शन आप से आप यानी सहज या स्वाभाविक रूप से ही सुखवादी हो जाता है। जब यह शरीर और जीवन यानी लौकिक जीवन ही सब कुछ है, जन्म के पहले और मृत्यु के पश्चात् कुछ नहीं है। जब प्रत्यक्ष के द्वारा प्राप्त ज्ञान या अनुभव ही सत्य है तो स्पष्ट ही है जो सामने है, उसका उपयोग (भोग) करना ही जीवन का चरम उद्देश्य या ध्येय होना चाहिए। यह विचार आना स्वाभाविक ही है।

भारतीय दर्शन में एक महत्वपूर्ण प्रश्न है वह यह कि जीवन का उद्देश्य या लक्ष्य क्या है? मनुष्य किन प्रेरणाओं से प्रेरित होकर कार्य करता है? चार्वाक को छोड़कर अन्य भारतीय दार्शनिक इस प्रश्न के उत्तर में जीवन के चार लक्ष्य बतलाते हैं। इसे उन्होंने पुरुषार्थ के नाम से संबोधित किया है। वे इस प्रकार हैं—

1. धर्म,
2. काम,
3. अर्थ,
4. मोक्ष।

चार्वाक इन चारों में से तीन का खण्डन करके केवल काम को ही जीवन का चरम लक्ष्य मानते हैं। जहाँ अन्य भारतीय दार्शनिक धर्म, अर्थ और काम को साधन के रूप में अपनाते हैं और मोक्ष को परम लक्ष्य बतलाते हैं, वहीं चार्वाक अर्थ को साधन मानकर काम को परम या चरम लक्ष्य बतलाता है। बार्हस्पत्य सूत्रम् में बतलाया गया है—कापालिकमेव काम साधने॥6॥¹⁸

सुख की प्राप्ति के लिए ही मानव जीवन भर प्रयास करता है। उसका प्रत्येक प्रयास मात्र सुखोपलब्धि के लिए ही होता है। इसलिए चार्वाकीय नीतिशास्त्र सुखवादी है। यहाँ भौतिक सुखों की ही प्रधानता दी जाती है। इस लिए इनके सिद्धान्त को भौतिकवादी सुखवाद कहा जाता है।

अब उपर्युक्त चार पुरुषार्थ (धर्म, काम, अर्थ और मोक्ष) के विषय में चार्वाक के मत अलग-अलग करके प्रस्तुत करेंगे।

धर्म—सामान्यतः भारतीय दर्शन में वेदानुकूल कर्म या श्रुति के अनुकूल कर्म को ही धर्म कहा जाता है और वेद के प्रतिकूल कर्म को अधर्म या पाप कहा जाता है। वेदों को ईश्वरकृत होने के कारण ये लोग इसे प्रामाणिक और निर्दोष मानते हैं। चार्वाक वेद को अथवा श्रुति को प्रामाणिक एवं निर्दोष नहीं मानते हैं। इनके अनुसार वेदों की रचना करने वाले धूर्त, भण्ड और निशाचर पंडितों ने

अपने स्वार्थ सिद्धि के लिए किया था। अतः वेद पर आधारित धर्म को अस्वीकार करना चार्वाक के लिए स्वाभाविक ही था। इन्होंने धर्म को जीवन का लक्ष्य नहीं माना है। जब ईश्वर का ही अस्तित्व नहीं है तो फिर उसके कृत वेद को नहीं मानना भी स्वाभाविक ही है। अतः चार्वाक धर्म को पुरुषार्थ मानने के लिए तैयार नहीं है।

वेदों के द्वारा प्रतिपादित धर्म, रीति-रिवाज, यज्ञ, दान, कर्मकांड सम्बन्धी बातों का एक ही लक्ष्य है—सीधी-सादी या भोली-भाली जनता से धन बटोर कर ब्राह्मणों की थैली भरना। दूसरे शब्दों में वेदों में धर्म के नाम पर बतलाये गये रीतिरिवाज, हवन, दान आदि का लक्ष्य एक ही है—साधारण लोगों को मूर्ख बनाकर अपनी झोली भरना। स्वर्ग और नरक का इस दुनियां से अलग या पृथक् कोई स्थान नहीं है। स्वर्ग और नरक तो इसी दुनियां में है। इससे पृथक् कोई स्वर्ग नरक नहीं है। कहा भी गया है—सकल पदार्थ यहीं जग माहीं, कर्महीन नर पावत नाहीं।

इन बातों का जिक्र बृहस्पति के सूत्र, सर्वदर्शनसंग्रह, षडदर्शन समुच्चय, चार्वाक दर्शन आदि पुस्तकों में अपने-अपने ढंग से किया गया है। उपर्युक्त सभी बातों का एक ही लक्ष्य है वह यह कि स्वर्ग, नरक, हवन, दान, पुण्य, पाप इत्यादि को आडम्बर अथवा ढोंग बतलाकर इस लौकिक जगत् में ही स्वर्ग और नरक का दर्शन करना। सुख में रहने वाला स्वर्ग में है और दुःख में रहने वाला नरक का जीवन बिता रहा है। सुखमेव स्वर्गः दुःखमेव नरकः। इसके लिए स्वर्ग की प्राप्ति और नरक से बचने के लिए धार्मिक रीति-रिवाजों का पालन करना निरर्थक है। श्राद्ध के अवसर पर मृतात्माओं के लिए (मरे हुए व्यक्तियों के लिए) खाने-पीने का सामान, पहनने के लिए जुता, ओढ़ने के लिए चादर, वर्षा से बचने के लिए छाता, मौज उड़ाने के लिए पलंग, मुद्रा आदि का दान करना मूर्खता है। ये चीजें मृतात्मा तक कैसे पहुँच सकते हैं? ये तो पुरोहितों के काम आते हैं। जब शरीर के साथ ही आत्मा भी नष्ट हो जाती है तो फिर वे मृतात्मा किस प्रकार से उस वस्तु को ग्रहण या प्राप्त करेंगे? मृत्यु के बाद आत्मा का जन्म नहीं होता। इसलिए पुनर्जन्म भी काल्पनिक वस्तु है। वैदिक कर्मकाण्ड में पशुओं के बलिदान को अवैध ठहराया गया है। इसीलिए तो बार्हस्पत्य सूत्रम् में नाग्निहोत्रं—वेदपादादीनि च॥ न तीर्थयात्राम्॥¹⁹ चार्वाक इन निरीह पशुओं के बलिदान का घोर विरोध करते हैं। इसीलिए तो सर्वदर्शन संग्रह में बतलाया गया है—

न स्वर्गो नापवर्गो वा नैवात्मापारलौकिकः।

नैवर्णाश्रमादीनां क्रियाश्च फल दायिकाः॥

अग्निहोत्रं त्रयो वेदास्त्रिदण्डं भस्म गुण्ठनम् ।
 बुद्धिपौरुष हीनानां जीविका धातुनिर्मिता ।।
 पशुश्चेन्निहत स्वर्गं ज्येतिष्ठोमे गमिष्यति ।
 स्वपिता यजमानेन तत्र कस्मान्न हिंस्यते ।
 मृतानामपि जन्तूनां श्राद्धं चेतृप्तिकाराणम् ।
 निर्वाणस्य प्रदीपस्य स्नेहः सम्बन्धवेच्छिस्वाम् ।²⁰

इतना ही नहीं इन्होंने (चार्वाक मतावलंबियों ने) एक साहसपूर्ण कार्य किया, वह यह कि संसार के अपने आन्तरिक मूल्य को एक साथ ही एक तरफ उठाकर रख दिया और ईश्वर एवं परलोक की कल्पना के मिथ्यारूप को प्रदर्शित कर दिया। डॉ. राधाकृष्णन् के शब्दों में “एक साहसपूर्ण कट्टरता के कारण दर्शन शास्त्र ने संसार के अपने आन्तरिक मूल्य को एक साथ ही एक ओर उठाकर धर दिया और ईश्वर एवं परलोक की कल्पना को लाकर आगे रख दिया जो कि मिथ्या कल्पना, स्त्रैणता, दुर्बलता और भीरुता तथा बेईमानी का चिह्न है।”²¹

इस कल्पना के आधार पर सुख और दुःख जीवन के मुख्य सत्य है। उपाधिरहित, स्वच्छन्द आनन्द, प्रमाद ही भौतिकवादियों का नैतिक आदर्श है। खाओ पिओ और मौज उड़ाओ, क्योंकि मौत तो सबको आनी है, जो हमारे जीवनों को निःशेष कर देगी। “जब तक जीवन तुम्हारे पास है, सुखपूर्वक जिओ, मृत्यु की तीव्र दृष्टि से कोई बच नहीं सकता, जब एक बार हमारे इस शरीर के ढांचे को लोग जला देते हैं तो फिर यह कैसे वापस आयेगा। अतः इनके मत में सबसे अधिक पुरुषार्थी वही कहलायेगा जो अधिक से अधिक सुख प्राप्त किया हो।

चार्वाक की तत्त्वमीमांसा और नीतिशास्त्र की आलोचना

चार्वाक की तत्त्वमीमांसा का एकमात्र आधार उसकी ज्ञानमीमांसा ही है। इनके अनुसार प्रत्यक्ष ही ज्ञान प्राप्ति का एकमात्र साधन है। जिस वस्तु का प्रत्यक्ष संभव है, वह यथार्थ और जिसका प्रत्यक्षीकरण नहीं किया जा सकता हो यानी जो प्रत्यक्ष प्रमाण से बाहर है, वह आवास्तविक है। अब स्पष्ट है कि जड़ या भूत का प्रत्यक्ष होता है। इसलिए उनके लिए जड़ पदार्थ ही परम तत्त्व है। अब स्वाभाविक ही है कि उस चरम तत्त्व से ही विश्व का निर्माण और विकास की व्याख्या करेंगे। आत्मा को भी भौतिक, आत्मा की अमरता को काल्पनिक अथवा गल्प बतलायेंगे, आध्यात्मिक सत्ता के रूप में आत्मा और ईश्वर के विचार

को अमान्य ठहरायेंगे। इस प्रकार चार्वाक एक ऐसे विश्व की रचना में विश्वास रखते हैं, जिसमें केवल भौतिक पदार्थ ही वास्तविक हो, जिसमें प्रकृति का शासन चलता हो और जिसमें आत्मा और परमात्मा (ईश्वर) का बिल्कुल अभाव हो।

उपर्युक्त बातों में हम पाते हैं कि चार्वाक की तत्त्वमीमांसा में भौतिकवाद के सभी दोष विद्यमान हैं। यह विश्व की व्याख्या करने में असमर्थ है। वास्तव में जड़ और चेतन, अचेतन और जीव में घनिष्ठ सम्बन्ध है लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि सभी वस्तुओं के मूल में जड़ ही है। जड़, जीव और चेतना में मौलिक अन्तर है। इसलिए जड़ से ही सबकी व्याख्या नहीं होती। अतः जड़वाद विश्व की संगत व्याख्या प्रस्तुत करने में समर्थ नहीं हो सका है। विश्व प्रक्रिया को यान्त्रिक मानने का चार्वाक के पास कोई प्रमाण नहीं है। आत्मा की अमरता और ईश्वर का खंडन करने में चार्वाक का एकमात्र साधन प्रत्यक्ष समर्थ नहीं है। आत्मा वस्तुतः इन्द्रियानुभव के विषय नहीं है। इसलिए इनका खण्डन लौकिक प्रत्यक्ष के आधार पर करना कदापि युक्तिसंगत नहीं है।

दूसरी तरफ चार्वाक ने जो स्वभाववाद के आधार पर विश्व-प्रक्रिया का वर्णन किया है वह भी आमान्य ही है, चूंकि यहाँ यह प्रश्न उठता है कि प्रकृति के अनन्त परमाणुओं में प्रत्येक का अलग-अलग स्वभाव हैं अथवा कुछ परमाणु एक स्वभाव के हैं और कुछ दूसरे? और फिर क्या उन परमाणुओं का स्वभाव अलग-अलग होने पर और रहता है और मिलने पर और? या मिलने की अवस्था में भी उनका स्वभाव एक ही रहता है? जैसे स्वभाववादी कहते हैं कि जल का एक विशेष स्वभाव है। प्रश्न यह है कि क्या जल का वही स्वभाव है, जो ऑक्सीजन और हाइड्रोजन दो भिन्न-भिन्न पदार्थ हैं। अगर उनका स्वभाव एक ही होता तो दो पदार्थ क्यों होते और यह सिद्धान्त नहीं बल्कि तथ्य है कि जो ऑक्सीजन या हाइड्रोजन का स्वभाव है उससे भिन्न जल का है। तब फिर यह प्रश्न उठता है कि जो काम हम जल से लेते हैं वह ऑक्सीजन और हाइड्रोजन से क्यों नहीं लेते हैं? इसका समुचित उत्तर चार्वाक के पास नहीं है। दूसरा प्रश्न यह है कि वह (ऑक्सीजन और हाइड्रोजन) आपस में मिलता कैसे है? चार्वाक के अनुसार इन दोनों में कुछ ऐसा स्वभाव है कि वह दोनों एक दूसरे के पास पहुँचते हैं तो मिल जाते हैं। तो फिर प्रश्न उठता है कि उनको एक दूसरे के पास कौन लाता है? यदि वह दोनों (ऑक्सीजन और हाइड्रोजन) दूर देशों से आकर मिल जाया करें तो पृथक्-पृथक् अवस्था में उनकी प्राप्ति असंभव हो जाएगी। इसके साथ ही साथ एक समस्या और है वह यह कि यदि हाइड्रोजन और ऑक्सीजन में स्वयं मिलने का स्वभाव होता है तो वह मिलकर या संयुक्त

होकर वियुक्त क्यों होते हैं? इसका जवाब भी चार्वाक के पास नहीं है। इन सब बातों से ऐसा लगता है कि हाईड्रोजन और ऑक्सीजन के आन्तरिक स्वभाव ही इन सब घटनाओं की मीमांसा करने के लिए पर्याप्त नहीं हैं।

वास्तव में सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय तीनों अलग-अलग तथा सब मिलकर यही सिद्ध करते हैं कि इनका कारण एक चेतन शक्ति है। व्यास मुनि ने वेदान्त दर्शन (ब्रह्म सूत्र) में इसीलिए कहा है कि जन्माद्यस्य यतः॥२॥²² अर्थात् सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय का कारण ब्रह्म है।

चार्वाक या चार्वाकानुयायी वास्तव में विज्ञान का सहारा लेकर सृष्टि या उत्पत्ति का प्रकार बताता है न कि कारण।

चार्वाक की आचारमीमांसा की आलोचना

चार्वाक का आचरण शास्त्र भौतिकवादी सुखवाद कहा जाता है। इसके अनुसार भौतिक सुख ही जीवन का चरम लक्ष्य है। यह परम्परागत पुरुषार्थों (अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष) में धर्म और मोक्ष का खंडन करता है और मात्र काम को पुरुषार्थ के रूप में स्वीकार करता है। वस्तुतः जो मनुष्य यह मानता है कि मैं “शरीर के अतिरिक्त कुछ नहीं हूँ, जन्म से पहले मेरा कोई अस्तित्व न था, मृत्यु के पश्चात् न रहेगा। उसके लिए यही लोक स्वर्ग है, मौत ही उसके जीवन का अन्त है। ऐसे पुरुष के विचार अपने शरीर से परे जा ही नहीं सकते। वह अवश्य ही ऋण लेकर घी पियेगा। जब तक इस संसार में है अधिक से अधिक सुख प्राप्त करना चाहेगा ही। यदि इस प्रकार के मनुष्य संसार में भर जाय तो उनके लिए सदाचार, परोपकार, अहिंसा आदि निरर्थक हो जाते हैं। अब स्पष्ट है कि जड़वाद में मनुष्य के व्यक्तित्व का विकास संभव नहीं है। इसमें व्यक्तित्व के निर्माण के बदले नाश ही होता है। अगर मनुष्य के मानसिक जीवन का मौलिक रूप जड़ है तो उसकी आत्मा, पुरुषत्व तथा उसके संकल्प की स्वतंत्रता इत्यादि के प्रश्न ही नहीं उठते। यदि मनुष्य की स्वतंत्रता भ्रमात्मक है तो नीति और आदर्शों का अर्थ ही नहीं रह जाता।

चार्वाकानुयायी तथा यूनान के एपीक्यूरियन लोगों के अनुसार स्त्री का आलिंगन ही पुरुषार्थ है (अङ्ग नालिग नाज्जन्यं सुखमेव पुमर्थता)। उनके मत में तो सबसे अधिक पुरुषार्थ वही है या कहलायेग जो किसी भी प्रकार से सुन्दर भोजन, सुन्दन वस्त्र एवं सुन्दर युवतियों को प्राप्त कर भोग-विलास करें। चार्वाक इस बात को भूल गये कि मनुष्य जबकि पशु के साथ-साथ मनोवैज्ञानिक और नैतिक प्राणी भी है। उसमें इड इगो के साथ ही साथ सुपर इगो भी है।

उपर्युक्त विवेचनों से स्पष्ट है कि चार्वाक का सम्पूर्ण आचरण शास्त्र एक निम्नकोटि की नैतिकता प्रस्तुत करता है। यह सभी मानवीय मूल्यों पर गहरा आघात पहुँचाता है। इसके नीतिशास्त्र सम्बन्धी सिद्धान्त मानव को पाशविक स्तर पर लाना चाहता है। चार्वाक को छोड़कर सभी भारतीय दार्शनिकों ने पाशविक वृत्तियों पर नियंत्रण रखने की बात बतलाई है और मानवीय गुणों की (करुणा, दया, सहानुभूति, प्रेम, परोपकार आदि) वृद्धि के लिए प्रोत्साहित किया है। दूसरे की भलाई अर्थात् परोपकार ही पुण्य है और दूसरे को पीड़ा पहुँचाना ही पाप है।

चार्वाक के सुखवाद के आधार पर समरूप नैतिक मापदण्ड की स्थापना नहीं की जा सकती हैं। चार्वाक के अनुसार उचित या शुभ वह है, जिससे सुख की प्राप्ति हो और अशुभ या अनुचित वह है, जिससे दुःख उत्पन्न हो, सुख और दुःख वस्तुतः सापेक्ष है। एक ही वस्तु कुछ लोगों के लिए सुख का पर्याय है तो दूसरों के लिए दुःख का पर्याय है। इस प्रकार एक ही वस्तु किसी के लिए शुभ तो किसी के लिए अशुभ हो जाती है। अतः समरूप नैतिक मापदण्ड स्थापित नहीं हो सकता है।

चार्वाक के सुखवाद के विरुद्ध वे सभी आक्षेप लगाये जा सकते हैं, जो पाश्चात्य नीतिशास्त्र के अन्तर्गत निकृष्ट स्वार्थमूलक सुखवाद के विरुद्ध लगाये जाते हैं। हम अपने अनुभव के दौरान यह पाते हैं कि प्रत्येक युग में स्वार्थ से ऊपर उठकर परमार्थ एवं लोककल्याण की भावना से ओतप्रोत होकर भी मनुष्य ने अपना सम्पूर्ण जीवन व्यतीत किया है। दधिचि, वशिष्ठ, बुद्ध, महावीर, ईसा, मूसा, स्वामी तुलसीदास, गांधी आदि इसके ज्वलन्त उदाहरण हैं। अतः परमार्थ का निषेध करना उचित नहीं है।

वस्तुतः जिस शास्त्र में कोई मान्यता नहीं, कोई सामान्य नियम नहीं, ईश्वर, धर्म, समाज के द्वारा दी गई व्यवस्था के प्रति श्रद्धा नहीं और न किसी प्रकार का नियंत्रण या संयम हो, उस सिद्धान्त को अनुचित ही कहा जायेगा। यदि कोई आदर्श नहीं हो तो उन्नति और अवनति का भी प्रश्न नहीं रहता। यह विश्व के आदर्शों को चूर-चूर कर देता है। इस सिद्धान्त पर चलने वाला समाज उन्नति नहीं कर पायेगा। चार्वाक का आचारशास्त्र सामाजिक उत्थान के मार्ग में बाधक ही सिद्ध होगा, सहायक नहीं। नैतिक मान्यताओं का परित्याग करना सर्वथा अनुचित है।